जीवनमंत्र

भक्त जीवन का अनुपम आदर्श

पूर्ण पुरुषोत्तम
भगवान स्वामिनारायण

श्री स्वामिनारायण मंदिर वासणा संस्था (SMVS)

जीवनप्राण
अबजीबापाश्री

सत्य, अहिंसा, प्रामाणिकता, पारिवारिक एकता आदि सामान्य आचरण से लेकर आध्यात्मिक दिव्य आचरणों का सिंचन करना और सनातन भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरी उपासना और अनादिमुक्त की आध्यात्मिक अलौकिक स्थिति का आस्वाद लेते हुए एक दिव्य समाज की रचना कर, श्रीजीमहाराज का प्यारा समाज तैयार करना यही इस आध्यात्मिक स्वामिनारायण संस्था का लक्ष्य है।

देश और समाज की प्रत्येक व्यक्ति में आध्यात्मिकता की नई चेतना प्रकट करके जीवन परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण कार्य में यह **SMVS** संस्था सतत सक्रिय रहती है। संस्था के क़रीब १०० संत-पार्षद और क़रीब १०१ त्यागी महिलामुक्तों, १०,००० से अधिक कार्यकर्ता और स्वयंसेवक संस्था द्वारा चल रहे सैकड़ों बाल-बालिका मंडल, युवा-युवती मंडल तथा पुरुष-महिलाओं के संयुक्त मंडल में जीवन परिवर्तन की दिव्य प्रेरणा प्रदान कर अपने जीवन की साफल्यता का अनुभव कर रहे हैं। नए-नए आध्यात्मिक अभियानों द्वारा जन-जन तक पहुंचकर अज्ञान और दुःखरूपी तिमिर को दूर कर, ज्ञान और सुखरूपी प्रकाश फैला रहे हैं।

भारत, यु.के., अमरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कुवैत, दुबई, केन्या, युगांडा, झाम्बिया आदि देशो में आध्यात्मिक सेवाओं के स्तर को बढ़ाने के साथ-साथ यह संस्था सर्वजनहितावह ऐसे सामाजिक सेवाकार्यों में भी शामिल है। शिक्षा, संस्कार और सत्संग का त्रिवेणी संगम खड़ाकर गुरुकुल जैसे संकुलो का निर्माण करके कई तरुणों के जीवन को आकार देने का सेवाकार्य और ज़रूरतमंदों को शैक्षिक और चिकित्सा सहाय की सेवा से लेकर वस्त्रदान, रोगनिदान कॅम्प, रक्तदान कॅम्प जैसी अनेक सेवाएं और चिकित्सा सेवाओं में विशेष रूप से मेडिकल सेन्टर तथा **SMVS** स्वामिनारायण अस्पताल आदि सेवाएं भी इस संस्था द्वारा की जाती हैं। चाहे भूकंप या कोरोना की आपदा हो या बाढ़ की तबाही किन्तु जनहित के लिए राहतकार्यों की सेवा में यह संस्था हर जगह खड़े पैर मौजूद रहती है।

संस्था की ऐसी मूल्यवान आध्यात्मिक, सामाजिक तथा सर्वजनहितावह सेवा-परिचर्या का उजाला सर्वत्र जनमानस में फैल चुका हैं। देश और समाज के जन-जन के प्रति यह संस्था अपने सेवाकार्य और आध्यात्मिक मूल्यों की सुगंध फैलाने में सदैव अग्रेसर रही है और आगे भी रहेगी।

जीवनमंत्र

भक्त जीवन का अनुपम आदर्श

संपादन एवम् अनुवाद कार्य

साहित्य लेखन विभाग

प्रकाशक

सत्संग साहित्य डिपार्टमेन्ट,

स्वामिनारायण धाम, गांधीनगर - ३८२४२१

जीवनमंत्र

रजूकर्ता : स्वामिनारायण मंदिर वासणा संस्था (SMVS)

आद्य संस्थापक : शुद्ध उपासना प्रवर्तक प.पू. अ.मु. सद्. श्री देवनंदनदासजी स्वामीश्री (गुरुदेव प.पू. बापजी)

प्रेरक : प.पू. अ.मु. सद्. श्री सत्यसंकल्पदासजी स्वामीश्री (गुरुवर्य प.पू. स्वामीश्री)

संपादन एवं
अनुवाद कार्य : साहित्य लेखन विभाग

प्रकाशक : सत्संग साहित्य डिपार्टमेन्ट, स्वामिनारायण धाम, गांधीनगर - ३८२४२१

फोन नं : ९९२५२३७००४

गुरुवर्य प.पू. स्वामीश्री के दिव्य आशीर्वाद

गाड़ी, बंगले, मान-सम्मान, कीर्ति, वाह-वाह, विषयसुख प्राप्त कर राज़ी होना वह जगत के जीवों का ध्येय है । जबकि सर्वोपरी निष्ठा, महिमा, ममत्वभाव, सेवा, समर्पण द्वारा भगवान स्वामिनारायण, सत्पुरुष और संतों-भक्तों को राज़ी करना वह भगवान के भक्त का ध्येय है ।

नौ कलमों द्वारा स्वामिनारायण भगवान के भक्त का जीवनमंत्र क्या होना चाहिए उसका इस पुस्तिका में सुंदर आलेखन हुआ है । इसका एकांत में बैठकर पठन करेंगे, इसमें आलेखित दिव्य पात्रों के प्रसंगों का मनन करेंगे तथा उनके दिव्य गुणों को अपने जीवन में चरितार्थ करने के लिए आग्रही बनेंगे, वे साधनकाल में श्रीजीमहाराज, सत्पुरुष और संतों-भक्तों के अंतर का राज़ीपा प्राप्त कर लेंगे और सदेह अनादिमुक्त की स्थिति पाने की पात्रता प्राप्त कर सकेंगे ।

जिस परिवार में सभी सदस्य एक साथ बैठकर इस पुस्तिका का बार-बार पठन-मनन कर अपने जीवन में दिखने वाली कमी दूर कर राज़ीपा के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए दृढ़ संकल्पी बनेंगे तो वे श्रीजीमहाराज की माला के मनके में निःशंक स्थान पाएंगे ही ।

લિખિત સાધુ સત્યસંકલ્પદાસના
જય સ્વામિનારાયણ.

प्रस्तावना

आज की इस भौतिकवाद की दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का अर्थ और ध्येय खोज रहा है । कुछ लोग धन, पद या प्रतिष्ठा के पीछे भागते हैं । जबकि अन्य लोग विषयसुख और व्यसनों में अपना जीवन व्यर्थ कर देते हैं । ऐसे लोगों के लिए जीवन एक अर्थहीन यात्रा के समान बन जाता है ।

हालांकि, उत्तम और महान व्यक्ति अपने जीवन-रथ को किसी उच्चतम जीवनमंत्रों के साथ आगे बढ़ाते हैं । महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा को जीवन का मंत्र बनाया । हमारे गुरुदेव प.पू. बापजी का मंत्र था 'सिद्धांत में समाधान नहीं और नियम-धर्म में छूट नहीं ।' यह पुस्तिका 'जीवनमंत्र' ऐसे ही एक दिव्य जीवन के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती है ।

जीवनमंत्र अर्थात् जीवन का ध्येय या उद्देश्य पूर्ण करने के लिए सहायक होने वाले मूल्य या महत्त्वपूर्ण पहलू और गुण । सरल शब्दों में यह एक आत्म-प्रतिज्ञा है कि, 'मैं अपने जीवन में यही करूंगा और यह नहीं ही करूंगा ।' इस पुस्तिका में प्यारे गुरुजी ने हमें दी हुई अद्‌भुत भेंट 'जीवनमंत्र' की उदाहरण सहित विस्तार से समझ दी है । जिसमें नौ कलमों के रूप में जीवन जीने के नौ आदर्श दिए गए हैं ।

यह मंत्र कारण सत्संगी के रूप में हमें कैसे आदर्शों के साथ जीवन जीना चाहिए उसका मार्गदर्शन देता है ।

इस पुस्तिका में दिए गए प्रेरणादायी पात्रों का मनन-चिंतन कर हम भी इन नौ कलमों को अपने जीवन में चरितार्थ करें ।

ई.स. २०२५ में एस.एम.वी.एस. संस्था का मुखपत्र घनश्याम मैगजीन पचास वर्ष की सुवर्णयात्रा कर रहा था । तब प्यारे गुरुवर्य प.पू. स्वामीश्री ने संकल्प किया कि, ‘घनश्याम मैगजीन में लोकप्रिय बनी श्रेणी ‘जीवनमंत्र’ की नौ कलमों को संवर्धित कर नूतन पुस्तिका के स्वरूप में समग्र हरिभक्त समाज को अर्पण करें । जिससे सभी इन मंत्रों को अपने जीवन में लक्ष्यार्थ कर श्रीजीमहाराज और प्यारे गुरुदेव को राज़ी कर, मूर्तिसुख के अधिकारी बनें ।’ गुरुजी के इस संकल्प के अनुसार ‘जीवनमंत्र’ पुस्तिका की हिन्दी आवृत्ति प्रकाशित करते हुए हम हर्ष की भावना अनुभव करते हैं । यह प्रकाशन मात्र एक पुस्तिका नहीं है परंतु हमें पथ दिखाने वाला तथा आने वाली पीढ़ियों को निरंतर प्रेरणा देने वाला एक अद्‌भुत डिवाइन लाइफ नेविगेटर है ।

आशा रखते हैं कि यह पुस्तिका पढ़ने के बाद हमारे जीवनमंत्र को और अधिक स्पष्टता से समझने में मदद मिलेगी और आदर्श जीवन जीने के लिए प्रेरित हुआ जा सकेगा ।

- साहित्य लेखन विभाग

अनुक्रमणिका

जीवनमंत्र : एक आदर्श ०७

कलम १ : स्वामिनारायण भगवान मेरे इष्टदेव हैं ११

कलम २ : यह सत्संग मेरा घर है १९

कलम ३ : महाराज की मूर्ति मेरा ध्येय है २६

कलम ४ : सदेह मैं मूर्तिधाम में ही हूं ३३

कलम ५ : महाराज के लिए ही मेरा जन्म है ४०

कलम ६ : उनके होकर ही सदा जीना है ४६

कलम ७ : भगवान और संत की सेवा ही मेरा सुख है ५३

कलम ८ : उनकी आज्ञा और अनुवृत्ति में ही सदा रहूंगा ६०

कलम ९ : प्रत्येक सत्संगी के सुख-दुःख में सदा भागीदार बनूंगा ६७

जीवनमंत्र : एक आदर्श

एक राजा जंगल में घूमने निकले। परंतु जंगल से बाहर निकलने का रास्ता भूल गए। शाम हो गई। राजा को बहुत भूख लगी थी। दूर एक संन्यासी शिष्य की पर्णकुटीर देख भोजन की आशा से राजा ने अंदर प्रवेश किया। संन्यासी शिष्य ने राजा का आदरभाव से स्वागत किया। भोजन कराया। राजा ने उसे चंदन की बाड़ी भेंट में दी। संन्यासी शिष्य को चंदन के वृक्ष के विषय में विशेष कुछ ज्ञान नहीं था। इसलिए उसने चंदन की लकड़ियां काट कर बेचना शुरू कर दिया।

एक-एक करके सारे ही वृक्षों की लकड़ियां बेच डालीं।

एक दिन गुरु ने ज्ञानोपदेश में बात की कि, "वन-वन में अगर नहीं होता। जंगल में हजारों वृक्षों में एक चंदन वृक्ष होता है। जिसकी कीमत लाखों में होती है।" गुरु की बात सुनकर संन्यासी शिष्य को पश्चात्ताप हुआ कि उसने तो पानी के भाव में चंदन की लकड़ियां बेचकर वाड़ी उजाड़ दी।

शिष्य ने गुरु को बात की। शिष्य की नासमझी और पछतावा देखकर गुरु बोले, "वत्स, पश्चात्ताप मत कर। यह पूरी दुनिया तेरी तरह ही नासमझ है। जीवन का प्रत्येक क्षण बहुत ही कीमती है पर लोग उसे कौड़ी की कीमत पर गंवा देते हैं।"

कहानी से मिलने वाला बोध वास्तव में मर्ममय है। चंदन समान मनुष्य जीवन वास्तव में प्रभुभक्ति कर आत्यंतिक मोक्ष पाने के लिए है। परंतु अधिकांश मानव पैसा, पद, प्रतिष्ठा तथा विषयसुख प्राप्त करने के पीछे ही कीमती मनुष्य जीवन कौड़ी की कीमत पर गंवा देते हैं। यही उसका जीवनमंत्र बन गया होता है। और जब खुद ने की हुई भूल का अहसास होता है तब बहुत समय बीत चुका होता है।

'Eat, drink and be marry' यानी कि 'खाना, पीना और विषय भोगना' यह जीवनमंत्र अपनाकर जीवन जीने वाला मानव, मानव के वेष में केवल पशु ही है।

उत्तम और महान व्यक्ति अपने जीवनरूपी रथ को किसी उच्चतम मूल्यों के साथ आगे हांकते होते हैं। उस जीवनमंत्र से ही महान व्यक्ति की महानता परखी जाती है।

सत्य और अहिंसा को जीवन का मंत्र बनाकर भारत देश को आज़ादी दिलाने वाले महात्मा गांधी इन्हीं में से एक महान हस्ती थे।

सिद्धांत में समाधान नहीं और नियम-धर्म में छूट नहीं - इस जीवनमंत्र को जीवन पर्यंत पकड़े रहकर हमारे सभी के जीवन में सिद्धांत और धर्म-नियम के

अविचल खूंटे गाड़कर समग्र संप्रदाय में **SMVS** की एक अलग गुडविल खड़ी करने वाले युगपुरुष यानी हमारे गुरुदेव प.पू. बापजी ।

हम सभी को कार्य का बंधन तुड़वाकर कारण स्वरूप श्रीजीमहाराज की मूर्ति में जोड़ने का संकल्प लेकर इस ब्रह्मांड में पधारे दिव्य सत्पुरुष प्यारे गुरुजी प.पू. स्वामीश्री के जीवन में पल-पल एक जीवनमंत्र के दर्शन होते हैं – 'अनंत को अनादि की स्थिति करानी ही है ।'

संक्षेप में, जीवनमंत्र यानी निर्धारित जीवन के ध्येय या हेतु को पूर्ण करने के लिए सहायक मूल्य या महत्त्वपूर्ण पहलू, गुणों । जिनके आनुषंगिक रहकर ही ध्येय पूर्ति का मिशन पार करना होता है ।

प्यारे गुरुदेव और प्यारे गुरुजी के योग-समागम से अब बुद्धिकक्षा पर, देह भूमिका पर इतना तो समझ आया है कि हमारा जीवनध्येय है – अवरभाव में महाराज और सत्पुरुष को राज़ी करना और परभाव में अनादि की स्थिति पाकर मूर्ति का सुख पाना । अब उसे लक्ष्यार्थ भूमिका पर ले जाने के लिए ही प्यारे गुरुदेव की आज्ञा-प्रेरणा से गुरुजी ने हमें एक अद्‌भुत जीवनमंत्र की भेंट दी है ।

जगत के देहधारी जीवों का जीवनमंत्र पैसा, पद, प्रतिष्ठा तथा पंचविषय में आसक्त होना ही है । उत्तम मानव का जीवनमंत्र प्रामाणिकता के मार्ग पर चलना

है । जबकि भगवान के भक्त के रूप में हमारा जीवनमंत्र क्या और कैसा होना चाहिए उसकी दिशा हमें कहां थी ? इसलिए ही केवल कृपा करके दोनों दिव्य सत्पुरुषों द्वारा दिए गए इस जीवनमंत्र की नौ कलमों का आइए आचमन कर उस प्रकार अनुसरण करने के लिए कटिबद्ध बनें :

स्वामिनारायण भगवान मेरे इष्टदेव हैं ।

यह सत्संग मेरा घर है ।

महाराज की मूर्ति मेरा ध्येय है ।

सदेह मैं मूर्तिधाम में ही हूं ।

महाराज के लिए ही मेरा जन्म है ।

उन्हीं के होकर ही सदा जीना है ।

भगवान और संत की सेवा ही मेरा सुख है ।

उनकी आज्ञा और अनुवृत्ति में ही सदा रहूंगा ।

प्रत्येक सत्संगी के सुख-दुःख में सदा भागीदार बनूंगा ।

यह जीवनमंत्र हमें मिली सर्वोपरी प्राप्ति का गौरवभान कराता है । श्रीजीमहाराज, सत्पुरुष, मंदिर, सत्संग सभा, संबंध वाले संतों-भक्तों के प्रति ममत्वभाव और अस्मिता की ज्योत प्रज्वलित करता है । हमारे जीवनध्येय का

अनुसंधान दिलाता है । आत्यंतिक कल्याण हो ही गया है इसका पूर्णकामपना और कृतार्थपना दृढ़ कराता है । आज्ञा-अनुवृत्ति, सेवा-समर्पण और बलिदान की भावना जगाता है । संक्षेप में प्राप्ति से स्थिति तक पहुंचने का मार्गदर्शन देता है ।

यह जीवनमंत्र जिसने अपने जीवन में लक्ष्यार्थ किया है ऐसे भूतकाल और वर्तमान के प्रेरणादायी पात्रों के दर्शन कर जीवनमंत्र की नौ कलमों के अनुसार अनुसरण करने के लिए कृतनिश्चयी बनें यही अभिलाषा ।

कलम १

स्वामिनारायण भगवान मेरे इष्टदेव हैं

जीवनमंत्र की इस सर्वप्रथम कलम द्वारा प्यारे गुरुजी हमें मिले हुए महाराज की खुमारी, कैफ़ तथा उनके विषय में अचल आश्रय यानी पतिव्रता की भक्ति की दृढ़ता कराना चाहते हैं। सर्वोपरी निष्ठा और पतिव्रता की भक्ति यह कारण सत्संग की मूलभूत नींव है। जिसे दृढ़ करना कारण सत्संग के प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है।

इस कलम का उच्चारण करते ही रोमावली खड़ी हो जाए, छाती फूल जाए... यह मिले हुए महाराज की अस्मिता का प्रतीक है। 'मेरे इष्टदेव हैं' यह शब्द ही पावर दे देता है। मेरे यानी मेरे अपने, पर्सनल। इष्टदेव यानी मुख्य देव, मेरे सबसे प्रिय देव, मेरे प्राणाधार हैं। कौन ? अनंतकोटि ब्रह्मांड के अधिपति, सर्वोपरी, सर्वावतारी स्वामिनारायण भगवान।

"कैसे मिले हैं आप हरि, कैसी अगाध दया की;
कोटानकोटि को एक ही मिली, किरण व्याप्त रही है धरी;
जबकि मुझे अनादि करके, मुखोन्मुख मिले हो हरि।"

कोई दातून वाली को चक्रवर्ती राजा रानी बना दे तो रानी को अपनी और अपने पति की पहचान देते हुए कितना गौरव होता है कि चक्रवर्ती राजाधिराज मेरे पतिदेव हैं । बस, ऐसा ही कुछ हमारे केस में हो गया है । अनंतकोटि ब्रह्मांड के अधिपति, राजाधिराज स्वामिनारायण भगवान हमारे इष्टदेव हैं । आनंद का महासागर उमड़ आए ऐसी यह बात है । अब इस कलम को हमें अपने जीवन में चरितार्थ करना है ।

पतिव्रता की भक्ति इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण के विषय में न बर्ते और अन्य अवतारादिक का भार, प्रतीति, महिमा, प्रीति रह जाए तो क्या परिणाम भुगतना पड़े वह स्वयं श्रीहरि के ही वचनों द्वारा जाने;

“सत्संग में रहकर जो परोक्ष की आराधना-उपासना करे तो वह अक्षरधाम में नहीं जा सकता ।” अर्थात् दूसरे किसी धाम में अटक जाता है ।

- श्रीहरिचरित्रामृतसागर : पूर-४, तरंग-१९

श्रीजीमहाराज के ये वचन पढ़कर जरा रुकें... विचारें... महाराज के सिवा किसी अन्य ऐश्वर्यार्थी का, दवा-औषधि, जंत्र-मंत्र, डोरा-धागा, शगुन-अपशगुन का भार, प्रतीति या प्रीति रह तो नहीं जाती न ? दैहिक, आर्थिक दुःखों में अपने इष्टदेव को छोड़कर ऐसे किसी माध्यमों का आश्रय तो नहीं ले लिया जाता न ?

श्रीजीमहाराज का जो सच्चा शरणागत होता है उसे जंत्र-मंत्र, डोरा-धागा आदि किसी का भार नहीं रहता । एकमात्र श्रीजीमहाराज के प्रति अटूट श्रद्धा और अचल भरोसा होता है ।

पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाए वैसे ही सद्. गुणातीतानंद स्वामी के दिव्य योग में आने से डकैती पर चढ़े खूंखार लुटेरे वालेरा वरु का जीवन परिवर्तन हो गया । स्वामी के समागम से सत्संगी बने और श्रीजीमहाराज की दृढ़ निष्ठा हो गई ।

एक बार वालेरा वरु लंबी बीमारी में फंस गए । वैद्यों-हकीमों की बहुत दवा की परंतु तबीयत सुधरने के बजाय और बिगड़ती गई । इससे उनकी बहन की श्रद्धा कम हो गई । मंत्रित डोरा बांधने की वालेरा से सिफारिश की । वालेरा ने कहा, “मेरे महाराज की जैसी मर्जी होगी वैसा होगा । इस देह के सुख के लिए अपने इष्टदेव की उपासना का भंग नहीं करूंगा ।” इसलिए वालेरा को पता न चले उस तरह उनकी बहन ने मंत्रित डोरा खाट के पाए से बांध दिया ।

उसी रात सद्. गुणातीतानंद स्वामी ने हाथ में घास लेकर वालेरा को स्वप्न में दर्शन दिए, “वालेरा, सिंह होकर घास खाई न !” ऐसा तीन बार स्वामी ने कहा फिर भी वालेरा को कुछ समझ नहीं आया । परंतु दूसरे दिन पता चला कि बहन ने खाट

के पाए से मंत्रित डोरा बांधा है । इससे अपने इष्टदेव के प्रति पतिव्रता की भक्ति में भंग कराने वाली बहन पर आगबबूला हो गए और जीवनभर बहन का मुख नहीं देखा ।

वर्तमान समय में प्यारे गुरुदेव प.पू. बापजी और प्यारे गुरुजी के योग-समागम से कैसे निष्ठावान सहजानंदी सिंह समान हरिभक्त समाज की कतार खड़ी हुई है !

अहमदाबाद, घोडासर क्षेत्र में रहने वाले किशोरमुक्त दीपभाई परषोत्तमभाई पटेल के जीवन का यह प्रसंग है । मई, २०२५ में ये मुक्तराज पीलिया के रोग से घिर गए । डॉक्टरी जांच के बाद पता चला कि पीलिया चौबीस पॉइंट है । उन्हें अस्पताल में भर्ती किया । थोड़ी राहत होने पर छुट्टी मिली । परंतु गांव (लुणावाड़ा) में रहने वाले संबंधी मंत्रित डोरा करवाकर इस मुक्तराज को बांधने के लिए ले आए । डोरा देखकर मुक्तराज व्याकुल हो गए । उन्होंने कहा कि, “यह डोरा मैं आज भी नहीं बांधूंगा और कल भी नहीं ही बांधूंगा । मुझे मेरे महाराज पर भरोसा है । वे जो करते हैं वह अच्छा ही करते होंगे ।”

इतने से बात नहीं रुकी । कुछ दिनों बाद बॉम्बे से उनके चाचा लुणावाड़ा आए थे । उन्होंने मुक्तराज को फोन करके कहा, “डोरा नहीं बंधवाना हो तो कोई बात नहीं परंतु गांव आ जाओ तो पीलिया उतरवा देते हैं ।” मुक्तराज जानते थे कि

पीलिया उतरवाने की विधि कराने के लिए परोक्ष स्थान पर ले जाएंगे । इसलिए उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया ।

कैसी श्रीजीमहाराज के प्रति अनन्य निष्ठा !! दैहिक बीमारी में हम ऐसी श्रद्धा, भरोसा, निष्ठा महाराज के प्रति रख सकते हैं या जहां-तहां सिर पटकने की इच्छा हो आती है ??

श्रीहरिचरित्रामृतसागर ग्रंथ में पूर-१०, तरंग-५४ में श्रीहरि ने कहा है कि, “दीर्घ रोग हो और रात-दिन पीड़ा से रोए तो भी अनजानी औषधि खाए नहीं, मलिन मंत्र जपाए नहीं, डोरा बंधवाए नहीं, मलिन शक्ति की प्रतीति रखे नहीं । सत्संग रखने में हानि हो तो भी पीछे हटे नहीं, परंतु चढ़ता रंग रहे और अग्नि में सुवर्ण की तरह जैसे तपे वैसे प्रदीप्त हो यह निश्चय वाले के लक्षण हैं ।”

जैसे केसरी सिंह को सौ उपवास (लांघण) पड़े तो भी कभी घास नहीं खाता वैसे इष्टदेव सर्वोपरी भगवान स्वामिनारायण का आश्रित कदाचित् कैसे भी दुःख, कठिनाई, पीड़ा, आपत्ति से घिरा हो तो भी भगवान स्वामिनारायण के सिवाय अन्य किसी का आश्रय न ले । ‘मेरे तो एक तुम ही अधारा’ का जबरदस्त कैफ़ हो ।

डभाण में विष्णुदास पटेल और उनके धर्मपत्नी भगवान स्वामिनारायण के निष्ठावान भक्त थे । घर की स्थिति दुर्बल । दो बेटियां थीं उनका ब्याह कर दिया

था। एक भी बेटा नहीं। तथापि, शरीर अनेक रोगों का घर बन गया था। फिर भी श्रद्धापूर्वक रोज पैदल चलते मंदिर में ठाकुरजी के दर्शन कर मजदूरी के काम पर जाते थे।

एक दिन रास्ते पर उनके आगे एक परोक्ष के महात्माजी चले जा रहे थे। रास्ते में दो सांड क्रोधावेश में आकर आमने-सामने झगड़ रहे थे। रास्ते पर उनका पागलपन देख विष्णुदास और उनके पत्नी एक चबूतरे पर चढ़ गए। परंतु महात्माजी सांड की चपेट में आ गए। सांड ने सींगों से महात्माजी को दूर फेंक दिया। शरीर में भीतरी मार लगने से वे बेहोश हो गए। इन्सानियत के नाते विष्णुदास और उनके पत्नी महात्माजी को झोली में डालकर घर ले गए। हल्दी-नमक पीसकर उसका लेप पूरे शरीर पर लगाया। थोड़े दिन रोज इस तरह सेवा कर महात्माजी को ठीक किया।

महात्माजी ने उनके घर की स्थिति देखकर निकलते समय झोली में से तीन गोलियां निकालीं और विष्णुदास पटेल से कहा, “मैं आपकी निःस्वार्थ सेवाभावना से राज़ी हुआ हूं। हिमालय की तलहटी से तीन जड़ी-बूटियां लाया हूं। प्रथम केसरी रंग की इस गोली को घिसकर पी जाना। आपके यहां एक पुत्र होगा। दूसरी पीले

रंग की गोली घिसकर पी जाओगे तो शरीर के तमाम रोग मिट जाएंगे । तीसरी लाल रंग की गोली घिसकर पी जाओगे तो आपकी दरिद्रता दूर हो जाएगी ।”

महात्माजी की बात सुनकर विष्णुदास पटेल बोले, “महात्माजी, इन गोलियों से यदि हमारे दुःख दूर होने वाले हों तो इन्हें वापस झोली में रख दीजिए । हमें जो दुःख है वह तो हमारे इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण की इच्छा-मर्जी से है । हमारी किसी आज्ञा लोप की शिक्षा होगी । यह तो इष्टदेव की दी हुई प्रसादी है । स्वामिनारायण भगवान हमारे इष्टदेव हैं । वे राज़ी होकर हमारे दुःख काटेंगे उस दिन हमें मंजूर है । परंतु लौकिक सुख के लिए इस जड़ी-बूटी का आधार हमें नहीं लेना है ।”

इस सत्संगी दंपत्ति ने एकमात्र इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण का ही आधार पकड़ रखा । सुखी होने की चाबी नजर के सामने होने के बावजूद अनाश्रय का संकल्प तक नहीं हुआ । लौकिक सुख प्राप्ति के लिए अनाश्रय कर इष्टदेव की उपासना में भंग न किया जाए इस बात की कितनी दृढतापूर्वक स्पष्टता होगी । इतना ही नहीं, इन महात्माजी को समागम कराकर भगवान स्वामिनारायण की निष्ठा दृढ करा दी । थोड़े दिन बाद श्रीजीमहाराज डभाण पधारे तब महात्माजी ने

महाराज के दर्शन कर साधु होने की प्रार्थना की। महाराज ने उन्हें दीक्षा देकर साधु बनाया। उनका नाम रखा 'वैराग्यानंद स्वामी'।

प्यारे मुक्तों, यदि हमने प्यारे गुरुदेव और प्यारे गुरुजी जैसे दिव्य सत्पुरुष की सेवा की हो तो स्वजीवन में हम भी सर्वोपरी उपासना की ऐसी खुमारी रखें।

स्व-अध्ययन

१. स्वामिनारायण भगवान मेरे इष्टदेव हैं ऐसा गौरव से सबके आगे बोल सकते हैं ? ☐

२. स्वामिनारायण भगवान के अलावा अन्य किसी का भार-प्रतीति-प्रीती रह जाती है ? ☐

३. गुणगान, महिमागान, भक्ति, उपासना, सेवा, पूजा आदि पतिव्रता स्त्री की तरह एक भगवान स्वामिनारायण का ही होता है ? ☐

४. किसी विपरीत स्थिति-परिस्थिति में किसी भी प्रकार की अंधश्रद्धा का आधार ले लिया जाता है ? ☐

५. लौकिक सुख की प्राप्ति के लिए कभी अनाश्रय हो जाता है ? ☐

दृढ संकल्प करें कि,

जो सुख-दुःख आए उसे इष्टदेव स्वामिनारायण भगवान की मर्जी समझकर राज़ी रहना है । श्रद्धा कम हो तो श्रीजीमहाराज से प्रार्थना करनी परंतु अनाश्रय तो नहीं ही करना है ।

कलम २
यह सत्संग मेरा घर है

घर शब्द ममत्वभाव से भरा है। इसीलिए कहा गया है कि, 'पृथ्वी का छोर घर।' मनुष्य दुनिया के छोर तक जाए परंतु घर आने पर ही शांति होती है। तथापि, घर शब्द मात्र मिट्टी, लकड़ी या ईंट-सीमेंट के मकान के साथ ही जुड़ा नहीं है। उसमें रहने वाले सदस्यों के प्रति स्नेह इस शब्द में समाया हुआ है।

प्यारे गुरुजी जीवनमंत्र की इस द्वितीय कलम द्वारा हमें ऐसा ही स्नेह सत्संग अर्थात् मंदिर, संतों और हरिभक्तों के साथ करने का सुझाव दे रहे हैं।

'यह सत्संग मेरा घर है' ऐसा तो हम सब बोलते हैं परंतु समय आने पर सत्संग और सत्संगी बंधुओं के लिए घर-परिवार जैसा ममत्वभाव नहीं रख पाते। जिसे सत्संग घर माना गया हो, भगवान, सत्पुरुष, संत-भक्त सच्चे सगे माने गए हों उसका मंदिर और संतों-भक्तों के प्रति ममत्वभाव कैसा होता है ? वह कुछ प्रसंगों द्वारा देखते हैं।

जब गढपुर मंदिर का निर्माण कार्य चल रहा था तब राजगीर ने आवाज लगाई कि, "गूगल गलाने के लिए एक खटिया चाहिए।" परंतु किसी ने उनकी आवाज नहीं सुनी। इस कारण स्वयं श्रीजीमहाराज खड़े हुए। लाडूबा के कमरे में गए और

वहां से खटिया लेकर बाहर निकले । वहां ही लाडूबा की सेविका यह दृश्य देख गई । उसने महाराज के हाथ से खटिया खींच लेने के लिए दूसरे छोर से खटिया पकड़ ली । महाराज और सेविका के बीच आपस में बहुत खींचतान हुई । परंतु महाराज ने युक्ति से खटिया छोड़ दी और सेविका खटिया के साथ नीचे गिर गई । फिर महाराज जल्दी से खटिया लेकर वहां से निकल गए । इस बात की जानकारी लाडुबा-जीवुबा को हुई इसलिए लाडुबा सेविका को डांटकर विदा करने लगे : “जा, अब तेरा मुझे कोई काम नहीं है । तूने महाराज के साथ झगड़ा किया ?” तब महाराज ने कहा, “लाडुबा, उसे निकालिए नहीं, घर में ऐसा ममत्व वाला मनुष्य तो एक चाहिए; तभी वस्तु सुरक्षित रहती है ।”

लाडुबा की सेविका की तरह हमने भी यदि सत्संग यानी मंदिर को अपना घर माना हो तो ऐसे ही ममत्वभाव से मंदिर की सेवा होगी । संतों-भक्तों को सच्चे सगे माना जाए । उनकी सेवा भी सच्चे ममत्वभाव से होगी । जैसे घर के सदस्यों की चिंता हमारी हो जाती है वैसे ही संतों-भक्तों की चिंता भी हमारी हो जाती है ।

गांव समढियाला का मंदिर बन रहा था । मंदिर की चारों तरफ की दीवार तो जैसे-तैसे खड़ी हुई । लेकिन ऊपर खपरैल (नळिया) डालना बाकी था और बारीश का मौसम था । बारिश का बहुत डर था । इसलिए सद्. वज्रानंद स्वामी को चिंता

हुई कि, 'मंदिर पर डालने के लिए खपरैल नहीं हैं । खपरैल कहीं मिल नहीं रहे हैं । और यदि बारिश टूट पड़े और चक्रवात या तूफान आए तो मुश्किल से खड़ी की गई दीवारें भी गिर पड़ेगी ।'

स्वामी ने सभी सत्संगियों को बुलाकर बात की कि, "अब क्या करेंगे ?" तब कोई बोल नहीं सका लेकिन टींबी गांव के वीरा भगत ने स्वामी से कहा, "स्वामी, आप बैल गाड़ी भेजें । एक जगह खपरैल ध्यान में हैं तो मैं गाड़ी में रखवा देता हूं ।" स्वामी ने पूछा, "कहां हैं ?" वीरा भगत ने कहा, "स्वामी, आप चिंता न करें; एक जगह हैं । आप बैल गाड़ी मेरे साथ भेजें ।"

वीरा भगत तो निकले गाड़ी वाले को लेकर और गाड़ी ले जाकर अपने घर पर खड़ी की । खुद अपने छप्पर पर चढ़ गए और गाड़ी वाले से कहा, "भाई, मैं खपरैल देता हूं वह तू गाड़ी में रखना शुरू कर ।"

गाड़ी वाला तो एकदम दंग रह गया । क्योंकि उसे तो आश्चर्य ही लगा कि बारीश के मौसम में अपने घर के ऊपर से खपरैल लेकर मंदिर के लिए दे देना !! ऐसे काम किए जाते हैं ! यह देख साधु ने कहा, "अरे वीरा भगत, यह क्या कर रहे हो ? अपने घर से खपरैल उतारकर मंदिर में दे रहे हो ? लेकिन आपके घर का क्या होगा उसका विचार नहीं आता ? भगत, ऐसा पागलपन नहीं किया जाता ।"

वीरा भगत ने कहा, “स्वामी, यह तो मेरे देह का घर है । मंदिर तो मेरे महाराज और संतों के रहने का घर है । इस घर का जो होना होगा वह होगा लेकिन पहला घर मंदिर । मंदिर में भगवान और संत खपरैल के बिना चिंता करते हों और मैं इन खपरैल के नीचे कैसे रह सकता हूं ?? पहला मेरा मंदिर । इसलिए जल्दी ये खपरैल गाड़ी में रखना शुरू ही कर दो ।” कहते हुए सभी खपरैल लेकर गाड़ी भर दी और मंदिर पहुंचा दी ।

“महाराज मेरे बापा मेरे, गुरुजी मेरे न्यारे,
संत और मंदिर भी मेरा, सभा कभी न टालूं ।”

किशोर गीत की यह पंक्ति तो बार-बार हम बोले होंगे । आनंद में आकर ताली बजाकर झूमे भी होंगे । लेकिन वीरा भगत ने इन शब्दों को चरितार्थ किया था ।

एक बार श्रीजीमहाराज गढपुर में सभा भरकर विराजमान थे । वहां गढाळी के आंबा सेठ गाड़ी में खजूर और घी के मटके भरकर आए । इतनी सारी खजूर और घी देखकर महाराज ने पूछा, “क्यों सेठ, इतनी सारी खजूर और घी यहां लाए ?” सेठ ने विचार किया, ‘यदि सीधे तरीके से कह दूंगा कि आपको, संतों को और हरिभक्तों को खिलाने के लिए तो महाराज नाराज होंगे ।’ इसलिए सेठ ने युक्ति

की, “महाराज, यहां व्यापार करने लाया हूं ।” महाराज ने कहा, “व्यापार... और यहां ?”

सेठ ने कहा, “हां तो महाराज ! जहां मुनाफा ज्यादा और तुरंत मिले वहीं व्यापार किया जाता है न ! यहां आप, संत और हरिभक्त मेरी आत्मा के सच्चे सगे हो । आपको खिलाऊं तो आपका बहुत राज़ीपा होगा । आपका राज़ीपा ही मेरी सच्ची कमाई है । इसलिए मैं खजूर-घी की गाड़ी यहां ले आया ।” सेठ के ममत्वभाव भरे वचन सुनकर महाराज बहुत राज़ी हुए ।

नई सीजन शुरू होती है तब कोई भी वस्तु घर में लाते ही क्या हमें आंबा सेठ जैसा विचार आता है ?? हमारा जो जवाब आएगा वही हमारे ममत्वभाव की कसौटी होगी !!

वर्तमान समय में आंबा सेठ जैसे पात्रों पर प्यारे गुरुदेव और गुरुजी कई बार राज़ीपा दर्शाते हैं । उनमें से एक दिव्य पात्र के दर्शन करते हैं । ई.स. १९८७ में वासणा मंदिर बनने के बाद संस्था में पू. संतों के लिए सीधा सामान (राशन) प.भ. श्री कांतिभाई तथा जशुभाई भावसार की किराने की दुकान से लाया जाता था । लेकिन वे उसका कभी बिल नहीं देते थे । गुरुजी हर महीने बिल मांगते थे । तीन महीने तक बिल नहीं दिया । फिर गुरुजी ने कड़क होकर कहा कि, “बिल नहीं

दोगे तो तुम्हारे यहां से सामान नहीं लेंगे।” फिर जशुभाई ने आंखों में आंसू के साथ कहा, “दयालु, मैं अपने परिवार में हर महीने १२ सदस्यों को सीधा देता हूं; कभी उनका बिल नहीं लेता। वैसे ही यह मंदिर भी मेरा घर है। ये आठ संत भी मेरे परिवार के सदस्य ही हैं। इसलिए मेरा वास्तव में २० सदस्यों का परिवार है। इसलिए इन सदस्यों का बिल कैसे लूं?” इसे कहते हैं सत्संग मेरा घर। सत्संग में संत हमें निःस्वार्थ भाव से दिव्यजीवन प्रदान करते हैं। इस ऋण को चुकाने के लिए हम भी उनके प्रति ऐसा ममत्वभाव विकसित करें।

ई.स. १९८६-८७ में वासणा मंदिर का निर्माण कार्य चल रहा था। प्यारे गुरुजी ने एक हरिभक्त से कहा, “भाई, ज़रा पानी छिड़कने की इतनी सेवा करेंगे?” तब उस हरिभक्त ने कहा, “स्वामी, मेरी तरफ देखकर तो सेवा दीजिए। मेरा दो मंजिल का मकान बना लेकिन मैंने अपने घर को कभी पानी नहीं छिड़का।” अगर सत्संग को घर माना हो तो क्या ऐसे शब्द निकलेंगे??

इस प्रकार, सत्संग मेरा घर है – ऐसी समझ दृढ़ हुई हो तो मंदिर की, संतों-भक्तों की सेवा बहुत ममत्वभाव से होती है। अन्यथा सेवा वह सेवा नहीं बल्कि बेगार (बोझ) लगती है, भाररूप लगती है, आगे पीछे हो जाते है। ऐसी सेवा मुझे करनी है? ऐसी आबरू बीच में आती है, वाद-विवाद होता है, छटकबारी खोजी

जाती है, सेवा दूसरों को बायपास होती है, समय और स्टेटस के सामने नजर जाती है ।

सत्संग में आंबा सेठ, कांतिभाई, जशुभाई जैसे घरधणी भी होते हैं और मेहमान, मजदूर और शत्रु जैसे भी होते हैं ।

हम किस प्रकार के हरिभक्तों में आते हैं ? उसकी स्व-जाचं करके सुधार करें ।

स्व-अध्ययन

१. मंदिर मेरा घर है ऐसा ममत्वभाव निरंतर रहता है ? ☐

२. सच्चे सगे महाराज, सत्पुरुष और संतों-भक्तों को समझते हैं ? ☐

३. सीजन की नई वस्तु पहले सच्चे सगे ऐसे महाराज, सत्पुरुष और पू. संतों को अर्पण करके फिर ही घर में लाई जाती है ? ☐

४. देह के संबंधियों की तुलना में संतों-भक्तों को अधिक प्यारे करके रख सकते हैं ? ☐

५. मंदिर की कोई एक सेवा घरधणी होकर करने का नियम लिया है ? ☐

दृढ़ संकल्प करें कि,

घर में प्रसंग हो तो हम अपनी जिम्मेदारी समझकर प्रसंग की चिंता रखते हैं वैसे ही मंदिर में प्रसंग-उत्सव (समैया) हो तो घरधणी होकर उसे शोभायमान करने की सेवा उठा ही लेनी है।

कलम ३

महाराज की मूर्ति मेरा ध्येय है

एक बार सद्. गुणातीतानंद स्वामी जूनागढ़ की गली से गुजर रहे थे। तब एक बच्चा गली में यहां-वहां दौड़-भाग कर रहा था। सद्गुरुश्री ने बच्चे को पास बुलाया और प्रेम से पूछा, “तू यह दौड़-भाग क्यों कर रहा है ?”

बच्चे ने उत्तर दिया, “बस, ऐसे ही।”

क्या हम भी इस बच्चे जैसा ही नहीं करते ??

बहुत दौड़-भाग करके पैसा, धन, संपत्ति, वाह-वाह, यश, कीर्ति, सम्मान प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं। लेकिन साथ क्या आएगा ? इसमें से कुछ भी नहीं।

परंतु जगत के जीवों के संग में यह सब प्राप्त करने का लक्ष्य बांध कर बैठे हैं इसलिए अति कीमती मनुष्य जन्म मिला, उसमें भी ऐसे सर्वोपरी भगवान स्वामिनारायण, जीवनप्राण बापाश्री और समर्थ गुरुदेव-गुरुजी की प्राप्ति हुई, फिर भी इस जीवात्मा के कल्याण के लिए महाराज और सत्पुरुष को राज़ी करना और सदेह मूर्तिसुख के भोक्ता होना, यह वास्तविक लक्ष्य भूल जाते हैं।

सर्वप्रथम हम जीवन का यह लक्ष्य निश्चित कर लें कि मुझे महाराज और सत्पुरुष को इस बार राज़ी कर ही लेना है । राज़ीपा के बदले में मूर्तिसुख के अधिकारी होना ही है । यदि लक्ष्य निश्चित किया होगा तो उसे प्राप्त करने के लिए अथाह प्रयत्न होंगे ।

संस्कृत भाषा के महान विद्वान पाणिनि की बात कहां अनजानी है ?

बचपन में एक ज्योतिषी मिले । बच्चे ने हाथ दिखाया और कहा, "मेरा भविष्य बताइए ।" बचपन से ही शरारती, खिलंदरा और ठोट छात्र के उपनाम को पाने वाले बालक पाणिनि का ज्योतिषी ने भविष्य बताया कि, "तेरे हाथ में विद्या रेखा ही नहीं है । तू अनपढ़ रहेगा और..."

तब पाणिनि ने दृढ़ संकल्प किया और लक्ष्य निश्चित किया कि, 'बस, किसी भी कीमत पर मुझे पढ़ना ही है और महान पंडित-विद्वान बनना है ।' और हाथ में चाकू लेकर दाहिने हाथ की हथेली में चीरा लगाकर विद्या रेखा बनाई और अथाह पुरुषार्थ किया । जिससे वे अपने लक्ष्य को पूरा कर सके और संस्कृत के एक महान विद्वान बने ।

हमें कोई दुनियावी बड़प्पन, मान या सिद्धि नहीं चाहिए, नहीं चाहिए कोई मेडल, शील्ड या पदक ।

परंतु केवल एक ही मूर्ति के सुख की प्यास हम सभी को है । तब गुरुदेव प.पू. बापजी और गुरुजी प.पू. स्वामीश्री ने हमें क्या लक्ष्य दिया ? महाराज की मूर्ति मेरा लक्ष्य है ।

इस लक्ष्य को पूर्ण करने का अभी श्रेष्ठ अवसर है । क्योंकि बापाश्री कहते थे कि, "यह जोग (दिव्य कारण सत्संग) मिला है वह अति दुर्लभ है । महाराज और सत्पुरुष जब प्रगट हो तब जो संकल्प करें वह सिद्ध होता ही है ।"

तब हमें महाराज की मूर्ति में जुड़ने का अपना लक्ष्य पूर्ण करने में लगे ही रहना चाहिए । महाराज की मूर्ति में जुड़ने का एकमात्र मार्ग यानी ध्यान । ध्यान से ही मूर्ति का साक्षात्कार होता है और उस सुख को पाया जाता है । बापाश्री ने तो ध्यान का बहुत ही महत्त्व बताया है । बापाश्री ने पहले भाग की १६७वीं बात में कहा है कि, "इस जोग में रहकर ध्यान करके मूर्ति सिद्ध नहीं करोगे तो महाराज के और सत्पुरुष के गुनहगार बनोगे ।" इसलिए हमें भी अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए पुरुषोत्तमनारायण के दिव्य स्वरूप का सर्वप्रथम ज्ञान दृढ़ करके फिर हमें जो अनादिमुक्त की स्थिति की, मूर्ति में रहकर मूर्ति का ध्यान करने की बापाश्री ने लटक दी, उस प्रकार ध्यान करना चाहिए । ध्यान करते-करते कदाचित मूर्ति न दिखे तो भी ध्यान करते रहना । वह देखकर भी महाराज राज़ी होंगे और निश्चित

ही पात्र बनाकर सुख प्रदान करेंगे । इस प्रकार, ध्यान का अति आग्रह रखकर महाराज का ध्यान करना ।

वागड देश के एक हरिभक्त थे । वे एक दिन भुज मंदिर के महंत सद्. श्री अक्षरजीवनदासजी स्वामी के पास आए । लगभग सत्तर वर्ष की आयु । इस उम्र में वैराग्य हुआ और मूर्ति सिद्ध करने की लगन लगी । स्वामी ने उनकी मुमुक्षुता और वैराग्य आदि शुभ गुण देखकर बहुत राज़ीपा दिखाया और उन्हें कसौटी की निहाई पर चढ़ाया (कसौटी लेना शुरू किया) ।

स्वामी ने तीन-तीन व्यक्तियों की सेवा अकेले उन्हें ही सौंपी, परंतु सेवा करते-करते थक जाएं वो वैसे नहीं । ध्यान करने का समय तो मिले ही कहां से ? लेकिन मूर्ति जिसका लक्ष्य था, ऐसे ये भक्त रात में सारी सेवा पूरी हो जाने के बाद अपने आसन पर आकर ध्यान करने बैठते और घंटों निकल जाते । ध्यान का इतना अधिक आग्रह कि कान में तेल के डिब्बे की कड़ियां फंसाकर डोरी बांधकर ध्यान में बैठते ताकि ध्यान में नींद न आए । स्वामी उनका आग्रह देखकर बहुत राज़ी हुए और साधु बनाकर दूसरी सभी सेवाओं से निवृत्ति दे दी । उन्होंने घंटों तक ध्यान करके अंततः मूर्ति सिद्ध की । कितना अधिक आग्रह !

गांव रोहा के दीवान कुंवरजीभाई बहुत ही विचक्षण बुद्धि वाले थे । अपने कल्याण के लिए सच्चे गुरु की खोज करते और कसौटी में जो पास होते उन्हें वे गुरु बनाते । दूसरे श्रेष्ठ मिलने पर पुराने और नए दोनों गुरुओं के बीच चर्चा करवाते और यदि नए गुरु जीत जाते तो पुराने गुरु को छोड़कर नए गुरु बना लेते । इस तरह उन्होंने अठारह गुरु किए थे ।

एक दिन हमारे समर्थ सद्. श्री ईश्वरचरणदासजी स्वामीश्री पधारे । स्वामीश्री का परभावी सामर्थ्य देखकर उन्हें स्वामीश्री में आकर्षण हुआ और सद्गुरुश्री को अपने गुरु के रूप में स्थापित करने के लिए पुराने गुरु के साथ चर्चा करने को कहा । सद्गुरुश्री ने कहा, "हम तो तैयार ही हैं । दिन निश्चित करो और आयोजन करो; हम जरूर आएंगे ।"

कुंवरजीभाई ने अपने पुराने गुरु से बात की लेकिन पुराने गुरु ने तो सद्गुरुश्री का परभावी सामर्थ्य जानकर चर्चा करने से ही मना कर दिया । इसलिए कुंवरजीभाई ने सद्गुरुश्री को अपने गुरु बनाएं ।

एक दिन कुंवरजीभाई ने सद्गुरुश्री से कहा, "स्वामी ! हमारे संप्रदाय के मुख्य शास्त्र कौन से हैं ?" सद्गुरुश्री ने कहा, "वचनामृत और शिक्षापत्री ।" तब कुंवरजीभाई ने कहा, "स्वामी, सभी वचनामृतों में से कौन सा एक वचनामृत दृढ़

करें और शिक्षापत्री के सभी श्लोकों में से कौन सा एक श्लोक दृढ़ करें तो सब कुछ पूरा हो जाए ?"

सद्‌गुरुश्री ने कहा, "२७३ वचनामृतों में से केवल एक अहमदाबाद प्रकरण का ७वां वचनामृत जिसमें भगवान के स्वरूप का ज्ञान है – हम ही पुरुषोत्तम हैं । और शिक्षापत्री के २१२ श्लोकों में से केवल एक ११६वां श्लोक जिसमें अपने स्वरूप का ज्ञान है ।

निजात्मानं ब्रह्मरुपं देहत्रयविलक्षणम् ।
विभाव्य तेन कर्तव्या भक्तिः श्रीहरि कृष्णस्य सर्वदा ।।

उन दोनों को दृढ़ करके आप ध्यान करो ।"

कुंवरजीभाई ने तो अपने और पुरुषोत्तमनारायण के स्वरूप के ज्ञान को लक्ष्यार्थ करने और मूर्ति रूपी लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए दृढ़ संकल्प करके पुरुषार्थ शुरू कर दिया ।

राज्य से एक महीने की छुट्टी ली और ध्यान करने लगे । शरीर भारी होने के कारण पालथी मारकर बैठने में भी सुविधा नहीं होती थी । फिर भी पालथी मारकर दोनों घुटनों पर चक्की के एक-एक पत्थर रखकर ध्यान करने बैठते और प्रतिदिन १०-१० घंटे ध्यान करते । एक महीने में पांच मिनट का निर्विकल्प ध्यान सिद्ध हुआ और भगवान के सुख का धीरे-धीरे अनुभव होने लगा और अब तो बस, मूर्ति सिद्ध

करने की ऐसी लगन लगी कि दीवान पद से इस्तीफ़ा दे दिया और मूर्ति आकार वृत्ति करके मूर्ति में जुड़ने के लिए ध्यान करने लगे।

ऐसे करते-करते बारह महीने बीत गए। एक दिन सद्‌गुरु पधारे और बात की, “स्वामी, आपकी कृपा से ढाई घंटे का निर्विकल्प ध्यान होता है तो कृपा करें।” जब पूरे तीन घंटे निर्विकल्प ध्यान होता है तब स्थिति होती है, परंतु सद्‌गुरुश्री ने कहा, “चलिए, आपको फल दिला देते हैं।” कुंवरजीभाई को अपने साथ लेकर सद्‌गुरुश्री वृषपुर पधारे। बापाश्री के दर्शन किए और बात की। बापाश्री कुंवरजीभाई पर बहुत राज़ी हुए और सिर पर हाथ रखते ही मूर्ति का साक्षात्कार करा दिया। अंततः अपना लक्ष्य जो मूर्ति सिद्ध करने रूपी शिखर था, उसे हासिल किया। तब हमें भी अपने मूर्ति रूपी लक्ष्य को हासिल करने के लिए और पात्र बनने के लिए ज्ञान, ध्यान और जागरूकता के साथ अभ्यास रूपी अथाह पुरुषार्थ करना चाहिए; महाराज और उनके मुक्तों के दर्शन, सेवा और समागम करके राज़ीपा लेना चाहिए ताकि सहज ही सहजानंद मिल जाए और सहज में सहजानंद का आनंद बर्तें।

स्व-अध्ययन

१. दिन में नौकरी, धंधा, व्यवसाय करते हुए मूर्ति ही मेरा लक्ष्य है ऐसा अनुसंधान रहता है ? ☐

२. मूर्तिसुख प्राप्त करने के लिए पात्रता के भाग स्वरूप गुरुजी द्वारा दिए गए ज्ञान-ध्यान चिंतन प्रोजेक्ट का प्रतिदिन लाभ लिया जाता है ? ☐

३. हर घंटे निमग्न होने का अभ्यास होता है ? ☐

४. दिन में रोज़ आधा घंटा महाराज की मूर्ति का ध्यान होता है ? ☐

५. दिन के दौरान मूर्तिसुख के लिए ५०-१०० बार प्रार्थना होती है ? ☐

दृढ़ संकल्प करें कि,

अब भौतिक सुखों से पीछे हटकर एकमात्र महाराज की मूर्ति में जुड़ने रूपी लक्ष्य को मजबूत बनाना ही है ।

कलम ४

सदेह मैं मूर्तिधाम में ही हूं

जीवनमंत्र की इस कलम में कारण सत्संग की उत्कृष्ट समझ दी गई है । यही समझ को प्यारे गुरुजी ने 'अनादिमुक्त हरि मूर्ति में ही हूं मैं' प्रार्थना में पिरो ली है । यही कारण सत्संग का मूल ज्ञान है, मूल लटक है । इस लटक के अभ्यास से ही अनादिमुक्त की स्थिति की ओर गति होती है ।

इस कलम के परभावी शब्दों को विस्तार से समझते हैं । सर्वप्रथम 'सदेह' यानी क्या ? क्या पंचभूत के देह सहित धाम में जा सकते है ? नहीं । मायिक देह से अमायिक, अक्षरातीत पुरुषोत्तम की मूर्ति में कैसे जा सकते है ? परंतु सामान्यतः ऐसी समझ होती है कि मरने के बाद ही धाम में जा सकते है । परंतु कारण सत्संग में सदेह कल्याण के वचन (कॉल) मिलते हैं । संक्षेप में, कारण सत्संग में कल्याण का वायदा नहीं है; नकद कल्याण है । मरने के बाद कल्याण होगा उसे वायदा कहा जाता है और सदेह कल्याण हो गया है उसे नकद कहा जाता है ।

अब धाम का विवरण समझते हैं । पूरे स्वामिनारायण संप्रदाय में अक्षरधाम में जाना है ऐसी समझ प्रचलित है । परंतु बापाश्री द्वारा दिया गया ज्ञान इससे आगे

है । श्रीजीमहाराज ने पंचाला के पहले वचनामृत में कहा है कि, “अक्षरब्रह्म है वह तो भगवान के (हमारे) अंग का प्रकाश है अथवा उनके (हमारे) रहने का धाम है ।” अर्थात् अक्षरधाम वह श्रीजीमहाराज की मूर्ति से निकलने वाले तेज का समूह है । वह महाराज के रहने का धाम है; मुक्तों का नहीं । मुक्त तो मूर्ति में रहते हैं । इसलिए अक्षरधाम में जाना है वह समझ पूरी नहीं है । अक्षरधाम कार्य है और महाराज की मूर्ति कारण है । हमें महाराज और सत्पुरुष ने कृपा करके अनादिमुक्त करके मूर्ति में रखा है । इसलिए हमारा धाम मूर्ति है । सद्. ब्रह्मानंद स्वामी ने इस लटक को कीर्तन में वर्णित किया है,

“रसबस होय रही रसिया संग, ज्यों मिसरी पय मांही मिली ।”

मूल मुद्दा यहां पूर्णकामपन का है अर्थात् कृतार्थपन का है । इसका अर्थ क्या ? तो मेरा कल्याण हो ही गया है इसकी अडिग (निरुत्थानपन से) दृढ़ता । इसके लिए पहले कल्याण विषयक कुछ बातें समझना अत्यंत आवश्यक है ।

गढ़ड़ा मध्य के ८वें वचनामृत में महाराज ने कल्याण की अवधारणा बताई है कि, “प्रत्यक्ष भगवान की प्राप्ति ही परमपद है ।” यानी महाराज की मूर्ति ही कल्याण का स्वरूप है । भगवान की प्राप्ति होना ही कल्याण है । अब कल्याण किसका होता है ? तो कीर्तन में कहा गया है कि,

“या तो प्रगट मिले भगवान रे, या तो उनके मिले हुए से कल्याण रे;
उसके बिना कोटि उपाय रे, मोक्ष आत्यंतिक नहीं होवे रे ।”

अर्थात् या तो प्रकट भगवान मिलें या तो उनसे मिले हुए अनादिमुक्त सत्पुरुष मिलें तभी आत्यंतिक कल्याण होता है । गढ़ड़ा प्रथम के ५४वें वचनामृत में भी सत्पुरुष को मोक्ष का द्वार कहा गया है । क्योंकि जीव को कल्याण के कोल (वचन) देने का कार्य महाराज अवरभाव में अदृश्य होने के बाद सत्पुरुष के द्वारा करते है । सत्पुरुष का मुख्य कार्य ही यही है । उनके दर्शन, स्पर्श, सेवा, समागम या आशीर्वाद में जो कोई जीव आता है, उसके अनंत जन्मों के पाप, पुण्य, कर्म जलाकर विधाता के लेख पर मेख मारकर उसे निराकार में से साकार पुरुषोत्तमरूप करते हैं, मूर्तिरूप करके मूर्ति में रखते हैं और उसके देह के स्थान पर सत्पुरुष की कृपा से महाराज प्रतिलोम रूप में आकर विराजमान होते हैं । इसे कहते है कारण सत्संग के वर्तमान, इसे ही कहते है कल्याण के कोल (वचन) । जो केवल और केवल सत्पुरुष द्वारा ही मिलते हैं । उनके अंतर के राज़ीपा से ही इस ज्ञान की दृढ़ता होती है और अनुभव तक पहुंचा जाता है ।

यह कोल (वचन) मिले उसे कहते हैं प्राप्ति । कारण सत्संग में प्राप्ति बिल्कुल मुफ़्त है । पात्रता के बगैर असीमित मिलती है । परंतु उसके बाद मुमुक्षु को सत्पुरुष

के सान्निध्य-समागम से श्रीजीमहाराज के स्वरूप का सर्वोपरी ज्ञान समझकर अनन्य निष्ठा और पंचवर्तमान की आज्ञा दृढ़ करनी पड़ती है । और उसके बाद अपने स्वरूप की पहचान करके 'सदेह मैं मूर्ति में ही हूं' इस लटक का अभ्यास करना पड़ता है । ऐसे ही ज्ञान-ध्यान के प्रयास से सत्पुरुष राज़ी होते हैं और अनादि की स्थिति कराते हैं ।

"जिसे परिपूर्ण निश्चय हो वह तो ऐसा समझे कि मुझे ये भगवान मिले उस दिन से ही मेरा कल्याण हो चुका है, और जो मेरा दर्शन करेगा या मेरी बात सुनेगा वह जीव भी सभी पापों से मुक्त होकर परमपद को पाएगा ।" - वच. वर. १२

इस पूरी अध्यात्म यात्रा में कृतार्थपन बहुत महत्त्वपूर्ण है । इस ज्ञान के अभ्यास की मुख्य रीति यही है कि मेरा कल्याण हो गया है, मूर्ति मिल गई है, अनादिमुक्त ही हूं । ऐसे कृतार्थपन में रहकर स्थिति के लिए प्रयास करना । जिसे बापाश्री ने कहा, "अधूरा मानना नहीं और पूरा मानकर बैठे रहना नहीं ।" फिर, वृंदावनबापा ने कहा, "पड़ाव (मुकाम) छोड़ना नहीं और निशाना चूकना नहीं ।"

हम पर बहुत बड़ी कृपा है कि गुरुदेव प.पू. बापजी और गुरुजी प.पू. स्वामीश्री ने हमारे एस.एम.वी.एस. के पूरे समाज को वर्तमान धराकर, देह - देह के भावों को छुड़ाकर मूर्ति में रख लिया है । परिणाम स्वरूप एस.एम.वी.एस. का छोटा बच्चा

भी आज छाती ठोककर कह सकता है कि, 'सदेह मैं मूर्तिधाम में ही हूं । ११०% मेरा आत्यंतिक कल्याण हो ही चुका है ।'

पहले भी जिन भक्तों को श्रीजीमहाराज के स्वरूप की सर्वोपरी निष्ठा दृढ़ हुई थी और सदेह में आत्यंतिक कल्याण की स्वीकृति हो गई थी, उन भक्तों का रजमा (उल्लास), मिली हुई प्राप्ति का कैफ़ वास्तव में वंदनीय, पूजनीय और दर्शनीय था ।

हलवद के अमरशी खत्री में ऐसा ही पूर्णकामपन रहता था । ध्रांगध्रा नरेश ने जब उनसे पूछा कि, "ऐ अमरशी, तू यह पूरा दिन 'स्वामिनारायण... स्वामिनारायण...' करता है तो क्या स्वामिनारायण तेरा कल्याण करेंगे ?" तब अमरशी भक्त ने खुमारी भरा जवाब दिया, "बापू, जिस दिन से मुझे स्वामिनारायण भगवान मिले उस दिन से मेरा तो कल्याण हो ही गया है परंतु मेरे घर में रहने वाले मनुष्य, पशु-पक्षी और कुत्ते-बिल्ली का भी कल्याण हो गया है । इतना ही नहीं, हे नरेश, आज आपने मेरी बात सुनी इसलिए आपका भी कल्याण हो गया, तो फिर मेरे कल्याण में क्या संशय रहे ?" अमरशी भक्त की बात सुनकर ध्रांगध्रा नरेश मन ही मन अमरशी भक्त और भगवान स्वामिनारायण को वंदन करने लगे ।

भुज के महामुक्त लाधीबा ने एक दिन अपने भाई हरजीवनभाई को मिली प्राप्ति की महिमा कहते हुए कहा कि भाई,

"हमारे भाग्य का नहीं कोई पार, सहज ही मिले हैं धर्मकुमार ।
देखो परोक्ष भक्त की रीति, स्वर्ग जाने खर्च करे लाखों वित्त ।
देह-दमन करते हैं मथकर, पर निश्चय कल्याण का नहीं ।
गांव-गिरास बहुत देते, दान देने में कोई कमी नहीं रखते ।
पर मोक्ष होगा या नहीं होगा, वह तो हमसे नहीं कहा जा सकता ।
पूर्णकामपन नहीं माना जाता, मोक्ष आत्यंतिक कैसे होगा ?"

तथापि, सदेह अक्षरधाम में ही बैठे हैं ऐसा कहते हुए आगे लाधीबा कहते हैं,

"प्रभु मिले हमें साक्षात, उन्होंने समझाई सारी बात ।
सदेह बैठे हैं वहां, शुद्ध अक्षरधाम के भीतर ।
ऐसा निश्चय किया है पक्का, स्वामी श्री सहजानंद द्वारा ।
मिले प्रगट पुरुषोत्तमराय, कहो उसके लिए क्या नहीं होता ?"

अंतिम जन्म के कोल (वचन) की प्राप्ति हो गई है परंतु जब तक स्थिति नहीं हुई तब तक मूर्ति का सुख नहीं आता । प्राप्ति से स्थिति तक का मार्ग, यदि जागरूकता न रखे और गाफिल रहे तो अत्यंत कठिन है । क्योंकि प्राप्ति के कैफ से बहक जाने

का भय है । पंचविषय और अभाव-अवगुण में खिंच जाने का भय है । प्राप्ति प्रॉमिसरी नोट कहलाती है और स्थिति नकद रुपये कहलाती है । जो प्राप्ति के आनंद से बहक जाते हैं उनका देहाध्यास कभी नहीं छूटता और स्थिति के लिए पात्र नहीं बना जाता । इसलिए स्थिति की पात्रता विकसित करने के लिए राज़ीपा के साधन जागरूकता के साथ करते रहना चाहिए ।

क्या जागरूकता रखनी है ? तो, सत्पुरुष ने वर्तमान धराकर मुझे सदेह मूर्ति में रखा है । स्वयं महाराज देह के स्थान पर आकर विराजमान हो गए हैं - इस समझ का चलते-फिरते सतत अनुसंधान रखकर अभ्यास करने से उसका निरुत्थानपन (अडिगता) होता जाता है जिसे कहते है ज्ञान-स्थिति और ध्यान के द्वारा मूर्ति का साक्षात्कार हो जाए उसे कहते है ध्यान-स्थिति ।

ऐसी स्थिति पाने के लिए विचार तो यही रखना है कि, 'मैं देहधारी जीव नहीं हूं । मैं देह से पृथक शुद्ध चैतन्य हूं । मुझे मुक्त करके मूर्ति में रख लिया गया है, अब महाराज ही हैं ।' और ऐसी समझ और रीति से बर्तने के बावजूद स्वामिनारायण भगवान द्वारा दिए गए पंचवर्तमान का पालन साथ में करते जाना है तभी जीवनमंत्र की चौथी कलम लक्ष्यार्थ हुई कहलाती है कि, 'सदेह मैं मूर्तिधाम में ही हूं ।'

स्व-अध्ययन

१. मुझे महाराज और सत्पुरुष मिले हैं। इसलिए उनकी कृपा से मेरा कल्याण हो ही गया है ऐसा कृतार्थपन रहता है ?

२. 'सदेह मैं मूर्तिधाम में ही हूं' - इस बात का निरुत्थानपना रहता है ?

३. मेरा कल्याण तो हो गया परंतु मेरे संपर्क (योग) में आने वाले का भी कल्याण मेरे संबंध से हो गया है - ऐसे पूर्णकामपन में आठों पहर रहा जाता है?

४. प्रतिलोम रूप में महाराज विराजमान हुए हैं इस लटक के अनुसार बर्ताव होता है ?

५. प्राप्ति में पूर्णता न मानकर स्थिति पाने के लिए प्रयास होते हैं ?

दृढ़ संकल्प करें कि,

जो कुछ सेवा, भक्ति, साधन करें वह 'सदेह में मैं मूर्तिधाम में ही हूं' ऐसे पूर्णकामपन के भाव में रहकर ही करने हैं।

कलम ५

महाराज के लिए ही मेरा जन्म है

"स्त्री-द्रव्य और बेटे के लिए, जो जीये वह जीव कहलाए..."

जीवनभर देह, पुत्र, परिवार के लिए न्योछावर हो जाए उसे कहा जाता है जीव। देशसेवा और जनहित के लिए न्योछावर हो जाए उसे कहा जाता है शहीद और श्रीजीमहाराज तथा सत्पुरुष के लिए तन, मन, धन न्योछावर करे उसे कहा जाता है सच्चा शिष्य। ऐसे सच्चे शिष्य ही मोक्षपद को प्राप्त कर सकते हैं।

गढ़डा मध्य के ६२वें वचनामृत में रघुवीरजी महाराज ने प्रश्न पूछा है कि, "हे महाराज ! इस जीव का मोक्ष वह क्या करने से होता है ?" तब श्रीजीमहाराज ने उत्तर दिया है कि, "जिसे अपने कल्याण की इच्छा हो उसे अपना जो देह, धन, धाम, कुटुंब, परिवार उन सभी को भगवान की सेवा में जोड़ देना चाहिए और भगवान की सेवा में जो पदार्थ काम न आए तो उसका त्याग कर देना चाहिए। ऐसी रीति से जो भगवान परायण बर्तता है वह गृहस्थाश्रमी हो, तो भी मरते समय भगवान के धाम में नारद-सनकादिक की (मुक्त की) पंक्ति में मिलता है, और परम मोक्ष को पाता है वही उसका उत्तर है।"

ऐसे आत्मकल्याण के प्यासे तीन हजार संत और लाखों हरिभक्त भगवान स्वामिनारायण के शरणागत सेवक थे। जिन्होंने एकमात्र भगवान स्वामिनारायण हेतु अपना तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण कर रखा था। उनके जीवन का यह मंत्र बन गया था कि, 'महाराज के लिए ही मेरा जन्म है।'

एक बार श्रीजीमहाराज ने ऐसा प्रकरण शुरू किया था कि, सत्संगी बंधुओं में जिसे भी दो बेटे हों उनमें से एक-एक को चिट्ठी लिखकर बुलाते और कहते, "हमें एक को साधु करना है।"

डांगरवा गांव के अगरोजी और अमरोजी दोनों भाइयों ने यह जाना। उन्होंने तय किया कि, "कभी भी हमारे ऊपर भी यह चिट्ठी आए। इसलिए हमें उस तरह से तैयार रहना चाहिए। सद्. गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है कि, 'अधिक द्रव्य, अच्छा घर और रूपवान स्त्री ये तीन जिसके पास हों वह कभी भगवान में जुड़ नहीं सकता।' इसलिए यह घर बेच देते हैं। कहीं महाराज हमें बुलाएं और कहीं इस घर का बंधन हो जाए तो ??" ऐसा सोचकर दोनों भाई घर बेचकर झोपड़ी जैसा घर बनाकर उसमें रहने लगे। जो पैसे आए वे गढ़पुर महाराज के पास भेज दिए। रोज राह देखते कि कब महाराज की चिट्ठी आए और महाराज की सेवा में जाएं।

एक बार दोनों भाई घर पर थे। मातृश्री बाहर गएं थे। उसी वक्त महाराज की चिट्ठी आई, 'दो में से एक भाई सेवा में आ जाओ।' लेकिन दोनों भाई जाने के लिए तैयार हो गए। अगरोजी ने कहा, "तू मां की सेवा करने रुक जा, मैं सेवा में गढ़पुर जाता हूं।" अमरोजी ने कहा, "नहीं, मैं जाता हूं। तू मां की सेवा के लिए घर पर रह।" दोनों बेटों को इस तरह झगड़ते देख घर आए मातृश्री ने कहा, "बेटा, किसलिए झगड़ रहे हो ?" तब दोनों एक साथ बोल उठे, "मां... मां... गढ़पुर से महाराज की चिट्ठी आई है। चिट्ठी में लिखा है कि दो में से एक भाई आ जाओ, साधु करना है। इसलिए मां मैं जाऊं न ? यह यहां आपकी सेवा में रुकेगा।" दोनों की महाराज के लिए जीने की तमन्ना देख उनके मातृश्री ने कहा, "बेटों, क्या तुम ऐसा मानते हो कि मैं तुम्हारे सहारे जीती हूं ? तुम्हारी सेवा की मुझे जरूरत पड़ेगी ? महाराज वैसी जरूरत नहीं ही पड़ने देंगे। मैं तो महाराज के सहारे जीती हूं। इसलिए मेरी चिंता बिल्कुल मत करना। जाओ, दोनों जाओ। और मेरी कोख से जन्मे हो तो साधु होकर अनंत का कल्याण करना। हमारा यह जन्म तो महाराज के लिए ही है।" ऐसा कहकर कलेजे के टुकड़े समान दोनों बेटों को हंसते मुख से, धन्यता अनुभव करते हुए महाराज के पास गढ़पुर साधु होने के लिए भेज दिया।

एक बार श्रीजीमहाराज पंचाला जा रहे थे । रास्ते में बालागाम आया । बालागाम के प्रेमीभक्त सुंदरमा के घर महाराज अचानक पधारे । महाराज को देखकर सुंदरमा देह का भान भूल गएं । सुंदरमा ने महाराज को खाट बिछाकर, रजाई बिछाकर उस पर विराजमान होने की प्रार्थना की और आनंद के अतिरेक में बोल उठे, "महाराज, मुझसे कुछ मांगिए; मैं आप पर बहुत राज़ी हुई हूं । आप जो मांगें वह मैं आपको दे दूं ।" श्रीजीमहाराज ने कहा, "सुंदरमा, आपकी जो सबसे प्यारी वस्तु हो वह हमें दीजिए ।" सुंदरमा घर में गएं और बहुत विचार किया : 'इस संदूक में मैंने अपने पूरे जीवन की पूंजी सहेजकर रखी है; वह मुझे बहुत प्यारी है । वही दे दूं ।' जब पैसे लेने जाते हैं तब गाय रंभाई और सुंदरमा बोले, "हंअअअ... इस पूंजी से तो मुझे यह गाय बहुत प्यारी है । लाओ न वही दे दूं ।" जब सुंदरमा गाय छोड़ने जाते हैं तभी उनके दो बेटे प्रेमजी और देवजी खेत में गए थे वे दौड़ते हुए घर आए, "मां ओ मां... हमारे घर महाराज पधारे हैं ?!" इतना सुनते ही सुंदरमा को हुआ, 'सबसे प्यारे तो मुझे मेरे ये दो बेटे हैं । इन्हें ही अर्पण कर दूं ।' बेटे घर में आए कि तुरंत ही सुंदरमा दोनों बेटों को एक तरफ ले गएं और बात की, "बेटा प्रेमजी, बेटा देवजी, महाराज ने मेरी सबसे प्यारी वस्तु मांगी है । मेरे सबसे प्यारे तो तुम दोनों ही हो । मुझे तुम दोनों को महाराज को अर्पण करना है । उसमें तुम्हें

कोई आपत्ति तो नहीं है न !" तभी दोनों बेटे एक साथ बोल उठे, "अरे यह क्या बोल रहे हो मां ? इसमें पूछना ही न हो । महाराज के लिए तो हमारा जीवन है । ऐसे ही पाठ आपने हमें बचपन से सिखाए हैं ।" बेटों के वचन सुनकर सुंदरमा बहुत राज़ी हो गएं । और दोनों बेटों का हाथ पकड़कर महाराज के पास ले गएं । दोनों के हाथ महाराज के हाथों में सौंपते हुए कहा, "महाराज लीजिए, ये दोनों मेरे सबसे प्यारे हैं । आज से आपको अर्पण । दोनों का स्वीकार करें महाराज ।" इन दोनों में आपके जैसे दिव्य कल्याणकारी गुण आएं और सहजानंदी सिंह बनें ऐसे दिव्य आशीर्वाद दीजिए महाराज ।" इतना कहकर सुंदरमा देहभान भूलकर नाचने और कूदने लगें । श्रीजीमहाराज ने दोनों बेटों को दीक्षा दी । देवजी को नाम दिया 'दहरानंद स्वामी ।' और प्रेमजी को नाम दिया, 'प्रसादानंद स्वामी ।'

इस प्रकार, सुंदरमा की तरह हम भी अपने बेटा-बेटियों को बचपन से ही महाराज के लिए जीवन जीने की दिव्य प्रेरणा देकर सुंदरमा की तरह महाराज के अंतर का राज़ीपा कमा लें ।

धन्य है ऐसी माता को !! जिसने बचपन से ही कलेजे के टुकड़ों को महाराज के लिए जीने के पीयूष (अमृत) पिलाए है !!

आइए, “महाराज के लिए ही मेरा जन्म है” इस जीवनमंत्र को स्व-जीवन में लक्ष्यार्थ करने हेतु स्वाध्याय करें :

स्व-अध्ययन

१. महाराज ने दिया हुआ तन, मन और धन महाराज के उपयोग में अर्पण होता है ? ☐

२. महाराज के लिए ही मेरा जन्म है । स्वजीवन में इस समझ को दृढ़ कर, अपने बेटे-बेटियों को बचपन से दृढ़ करवाते हैं ? ☐

३. हमारा समय, शक्ति, बुद्धि, कौशल का महाराज के लिए विशेष रूप से उपयोग हो ऐसे प्रयास होते हैं ? ☐

४. एक निश्चित आयु के बाद घर-संसार से निवृत्त होकर अधिक समय मंदिर और संतों की सेवा में उपयोग हो ऐसा आयोजन करने के उपाय में रहा जाता हैं ? ☐

५. महाराज की आज्ञा के अनुसार नियमित रूप से समय का धर्मादा निकलता है ? ☐

दृढ़ संकल्प करें कि,

रोज़ नियमित मैं कौन हूं ? किसलिए आया हूं ? मुझे क्या करना है ? और मैं क्या कर रहा हूं ? ऐसे चार प्रश्नों का मनन सहित चिंतन करें ही।

कलम ६

उन्हीं के होकर ही सदा जीना है

जब कोई स्त्री किसी पुरुष के साथ विवाह बंधन में बंधती है, तब से वह उस पुरुष की हो जाती है। उसके नाम के पीछे अब उस पुरुष का नाम लगता है। वह अपने माथे पर उस पुरुष का सिंदूर लगाती है और अपने गले में उस पुरुष का मंगलसूत्र रखती है। यही हिंदू धर्म की प्राचीन रीति है। यह करने में स्त्री को कोई शर्म या संकोच नहीं होता। बल्कि गौरव होता है। वैसे ही हमें भगवान स्वामिनारायण के आश्रित होने के बाद उनके कहलाने में और उनके होकर जीने में संकोच नहीं, गौरव होना चाहिए। यदि कोई हमें स्वामिनारायण के कहे तो गौरव से छाती ठोककर कहना चाहिए कि, 'हां, हां एक बार नहीं लाख बार स्वामिनारायण का था और हूं और स्वामिनारायण का होकर ही जीऊंगा। बोलो क्या कहना है?'

आज तक अनंत देह धारण किए, उसमें देह के सगे-संबंधियों तथा बीवी-बच्चों के होकर रहे। अब इस जन्म में तो बीवी-बच्चों के या देह के सगे-संबंधियों के होकर नहीं रहना है, परंतु महाराज और सत्पुरुष के होकर ही जीना है। और उसके लिए चाहे कैसी भी मुश्किलें आएं, कैसी भी कठिन कसौटी से पार उतरना पड़े, फिर भी इस देह से तो मुझे महाराज और सत्पुरुष को राज़ी कर ही लेना है, ऐसा आग्रह रखना चाहिए।

पहले के संतों-हरिभक्तों ने तो कितने दुःख सहे हैं और कितनी कठिन कसौटियों से सफलतापूर्वक पार उतरे हैं और फिर भी महाराज को नहीं छोड़ा है।

संवत १८७६ में श्रीहरि ने जलझीलनी का उत्सव किया। संतों के साथ जलक्रीड़ा करने के बाद महाराज ने सभा की। इतने में दूर से एक संत को आते देखा। उन्होंने पास आकर महाराज को दंडवत किए। परंतु दंडवत ठीक से नहीं कर सके। धीरे-धीरे महाराज के पास आए और चरणों में सिर रखकर रोने लगे। महाराज ने उनके मस्तक पर दो हाथ रखकर शांत किया। फिर पूछा, "साधुराम! आपको क्या हुआ है?" उन्होंने महाराज से कहा, "महाराज! मेरे जीव में से या तो आपके स्वरूप का निश्चय निकाल दीजिए और या तो मुझे आपके पास सत्संग में रखिए।" उनकी यह व्याकुलता देखकर महाराज ने कहा, "साधुराम ! हमारे स्वरूप का निश्चय आपके अंतर से निकाल देना वह हमारे हाथ में नहीं है। वह तो कुसंगियों का काम है। उसके लिए आपको यहां आने की ज़रूरत नहीं है।"

यह सुनकर स्वामी फिर रोने लगे। उनसे खड़ा भी नहीं रहा जा रहा था इसलिए अचानक नीचे गिर पड़े। उनके शरीर पर से वस्त्र खिसक गया। उनके पूरे शरीर पर बाहर आ गए मांस के लोथड़े दिख रहे थे। महाराज तुरंत खड़े हो गए और उनके पास बैठ गए और धीरे से पूछा, "साधुराम! यह क्या हुआ? पूरे शरीर को यह उपाधि किसने की? किसने ऐसा कहर किया?"

स्वामी ने कहा, “महाराज, एक छोटे गांव में परोक्ष का स्थान था। वहां रात को दस बजे मैं पहुंचा और वहीं रहने का निश्चय किया। झोली लटकाकर मैं स्वामिनारायण... स्वामिनारायण... इस प्रकार आपका भजन करने लगा। वह सुनकर वहां ठहरे हुए दूसरे बैरागी मेरे पास आए और मुझसे पूछा, ‘तुम किसका साधु है और क्या भजन करते हो ?’ मैंने तो कहा, ‘मैं स्वामिनारायण भगवान का साधु हूं और उन्हीं का भजन करता हूं। यदि आपको पसंद न हो तो मन में भजन करूंगा।’ पर वे तो स्वामिनारायण नाम सुनकर भड़क गए। मुझसे कहा, ‘स्वामिनारायण का भजन छोड़ दे, नहीं तो तुम को जला देगा।’ पर महाराज, आपका हूं और आपका होकर ही मुझे जीना था इसलिए मैंने उनकी कोई बात नहीं सुनी। और एकांत में बैठकर स्वामिनारायण धुन करने लगा। इसलिए वे बहुत चिढ़ गए। उन्होंने भट्ठी में चिमटे रखकर बहुत तपाए और फिर मेरे पास आकर कहा, ‘बाबुडी ! स्वामिनारायण का नाम मत लेना, ये देखा ? अभी तुम को जला देगा।’ मैंने फिर नाम मन में बोलना शुरू किया। पर मेरे होंठ फड़फड़ाते देखे इसलिए मुझे नीचे गिराकर लाल-तप्त हुए चिमटों से मेरे पूरे शरीर पर दाग देने लगे। उस दुःख से मुझसे ज़ोर से ‘स्वामिनारायण... स्वामिनारायण...’ बोल दिया जाता। इसलिए स्वामिनारायण नाम सुनकर वे फिर दाग देने लगे। फिर तो मुझे कुछ होश नहीं रहा। इसलिए वे सब अपनी जगह जाकर सो गए। सुबह हुई। मैं होश में आया और सीधा गढपुर आपके पास पहुंचा हूं।”

महाराज की आंखों से आंसू बहने लगे । महाराज के हाथ इस साधु के शरीर पर फिरने लगे । अचानक महाराज ने कहा, “इस साधु का बिस्तर हमारी अक्षरओरडी पास ही करवाओ । हम उनकी सेवा में रहेंगे ।” यह सुनकर सद्. नित्यानंद स्वामी, सद्. ब्रह्मानंद स्वामी आदि संत बोल उठे, “महाराज ! आप कहेंगे उस प्रकार हम स्वामी की सेवा करेंगे । आपको क्यों तकलीफ लेनी चाहिए ?” महाराज ने करुण स्वर में कहा, “मुझे तकलीफ नहीं है, मुझे व्यथा है स्वामी ! ये दाग हमारे शरीर पर पड़े हैं । इतने दाग देने के बावजूद इस साधु ने हमें नहीं छोड़ा है तो अब हम उन्हें कैसे छोड़ें ? हम उनके पास ही रहेंगे, उनकी सेवा करेंगे । उनकी व्यथा मिटेगी तभी हमारे अंतर में शांति होगी ।”

इन साधुराम पर कितनी विकट स्थिति-परिस्थिति आई फिर भी महाराज को नहीं छोड़ा । महाराज के होकर ही रहे । महाराज के होकर ही जिए तो महाराज के अंतर का राज़ीपा कमा सके । वैसे ही हमें भी देह के सगे-संबंधियों के, विरोधियों के कटु वचन सुनने के कदाचित संयोग आएं फिर भी महाराज और सत्पुरुष को न छोड़े । केवल एक महाराज और सत्पुरुष के वफादार रहकर उनके होकर ही जीवन जीए ।

सौराष्ट्र प्रदेश के जेतपुर गांव में जीवा जोशी नाम के एक पवित्र ब्राह्मण रहते थे । वे श्रीजीमहाराज के अनन्य उपासक, संपूर्ण आज्ञापालक, निर्भय भक्त थे । इष्टदेव की छोटी से छोटी आज्ञा को भी आदर से सावधानीपूर्वक पालते और अपने स्त्री-पुत्र आदि सभी परिवारजनों में भी उन्होंने सत्संग के गहरे संस्कार लगातार

सावधानी रखकर डाले थे। और हमेशा भगवत् कथावार्ता सुनाकर उन्हें सत्संग की उत्तम दृढ़ता कराई थी। उन्होंने अपने संपर्क में आने वाले कईं लोगों को बुरी आदतें छुड़वाकर सदाचारी बनाया था।

जीवा जोशी की धर्म-नियम पालन की दृढ़ता, सत्संग का बल और आर्थिक स्थिति बहुत कमज़ोर होने के बावजूद बहुत संतोषपूर्वक निश्चित रूप से आनंद में रहने की आदत देखकर कुछ कम समझ वाले लोग तथा सगे-संबंधी ईर्ष्या भाव रखकर उन्हें हर बार मुश्किल में डालते। स्वामिनारायण भगवान और स्वामिनारायण संप्रदाय का धर्म छुड़वाने की कोशिश करते। फिर भी जाति और गांव के लोगों की कठिन कसौटी भी सहन करके उन्होंने सिर के बदले (प्राणों की बाज़ी लगाकर) सत्संग रखा था। समाज में घर कर गए प्याज, लहसुन आदि तामसी आहार तथा गांजा, भांग, अफीम और तंबाकू इत्यादि व्यसन जो विशेष रूप से त्याज्य माने गए हैं, वे जीवा जोशी कभी खाते-पीते नहीं थे। सात्त्विक आहार के अलावा वे कोई भी वस्तु उपयोग में नहीं लेते थे। अपने सगे-संबंधियों में त्यौहारों पर भोजन का अवसर आए तब तथा विवाह या मृत्यु के प्रसंग में अथवा ब्राह्मणों की चौरासी आदि के भोजन प्रसंगों में भोजन करने जाना पड़े तब दाल-सब्जी आदि वस्तुओं में लहसुन, प्याज या हींग हो तो किसी को कुछ भी बताए बिना केवल लड्डू खा लेते थे। धीरे-धीरे यह बात जब दूसरे लोगों के पूरी तरह ध्यान में आई तब कुछ जल्दबाज़ स्वभाव के द्वेषी लोग जो मन में आए वैसा बोलकर बार-बार परेशान करते और जीवा जोशी के साथ बैर रखकर निंदा करने लगे। परंतु वे तो

मौन रहकर शांति से भजन-स्मरण करते थे इसलिए उन लोगों का कुछ चलता नहीं था।

एक बार श्रीजीमहाराज जेतपुर पधारे तब जीवा जोषी पुत्रों सहित पैर छुकर सभा में बैठे तो महाराज ने कहा, "ये आपके बेटे बड़े हो गए हैं फिर भी जनेऊ क्यों नहीं दी ?" जोशी ने कहा, "आर्थिक स्थिति कमज़ोर है । अभी देश-काल भी अनुकूल नहीं है ।" महाराज ने तुरंत ही पूछा, "जनेऊ देने में कितना खर्च होता है ?" तब उन्होंने कहा, "यदि साधारण करें तो दो सौ कोरी खर्च होता है और अच्छा करें तो पांच सौ कोरी लगता है ।" फिर एक गुणबुद्धिवाले व्यापारी दर्शन करने आए। उन्हें महाराज ने सिफारिश की कि, "हमारे खाते में लिखकर आपकी दुकान से जो चाहिए वह पांच सौ कोरी तक का माल इन जीवा जोशी को देंगे ?" तो सेठ ने हां कहा। फिर दूसरे दिन महाराज ने दोनों भाइयों को विधिपूर्वक जनेऊ दी। इस अवसर पर सभी सगे-संबंधियों को भोजन के लिए निमंत्रण पहले से दिए थे जो सभी ने स्वीकार किए थे परंतु भोजन का समय हुआ तब गहरी ईर्ष्या के कारण कोई भोजन करने नहीं आया। तब महाराज ने न आने का कारण पूछा तो किसी ने कहा कि, "एक ग्रंथ में लिखा है कि, जिस लड़के को दूसरे ने जनेऊ दी हो उस लड़के के हाथ का श्राद्ध उसके पिता को नहीं पहुंचता पर जनेऊ देने वाले को मिलता है ।" तब महाराज ने कहा, "हमें जो मिलेगा वह पूरे जगत को पहुंच जाएगा।" यह बात सुनकर जाति के लोग चले गए पर भोजन करने नहीं बैठे। फिर रसोई तैयार थी वह साधु, पार्षद तथा सत्संगियों को खिला दी और गरीब लोगों को

खिलाया। परंतु जाति के लोगों के मोह (मुहब्बत) में आकर श्रीजीमहाराज को नहीं छोड़ा। क्योंकि, दृढ़ था कि उन्हीं के होकर ही सदा जीना है।

स्व-अध्ययन

१. महाराज और सत्पुरुष के लिए कभी ढीला शब्द न सुन लेकर क्या हम कड़ा जवाब दे सकते हैं? ☐

२. सत्संग में मान-अपमान हो तो कभी दूर न होते हुए कल्याण की गरज रखकर संतों-भक्तों से अधिक से अधिक निकट रहने के आग्रही बनते हैं? ☐

३. कितनी भी मुश्किल आए, विपरीत संयोग आए उसमें कभी महाराज और सत्पुरुष को नहीं छोड़कर उनके साथ जीव जोड़कर उनके सान्निध्य में ही रहने की गरज रहती है? ☐

४. हमेशा महाराज और सत्पुरुष का वफादार रहा जाता है? ☐

५. सत्पुरुष के लिए कोई गलत बोले तो सत्पुरुष के स्वरूप में निःसंशयपना रहता है? ☐

दृढ़ संकल्प करें कि,

मिले हुए महाराज और सत्पुरुष से अधिक स्नेह-प्रीति किसी और में नहीं ही होने देनी है।

कलम ७

भगवान और संत की सेवा ही मेरा सुख है

लोग आज नियमित सुबह जोगिंग, वॉकिंग, योगा और कसरत के पीछे आधा-पाव घंटा बिताते हैं । क्योंकि, पहला सुख निरोगी काया अर्थात् शरीर की स्वस्थता को ही सुख मानते हैं । इसी तरह, परिवारजनों को छोड़कर सुबह से लेकर रात तक नौकरी-धंधे पर दिन व्यतीत करते हैं । क्योंकि, पैसा मेरा परमेश्वर अर्थात् पैसा ही सर्वस्व माना गया है ।

इस प्रकार, दैहिक स्वस्थता, पैसा, स्टेटस, प्रसिद्धि, रंग-राग, भोग-विलास, साज-सामान और रजोगुणी जगत के मायिक नाशवंत तुच्छ पदार्थों में ही जगत के जीव सुख मानते है । जबकि भगवान के भक्त को भगवान और संत की सेवा में सुख माना जाता है । क्योंकि, मायिक पदार्थों में आसक्ति जन्म-मरण के चक्र को खड़ा करती है और संतों-भक्तों की सेवा से महाराज और सत्पुरुष के अंतर का राज़ीपा प्राप्त होता है । सेवा से अशुद्ध अंतःकरण शुद्ध और पवित्र होता है । सेवा से अहंकार पिघलता है और दासत्वभाव आता है । इसलिए, जिसे भगवान और संत की सेवा में सुख माना जाए उसकी ही मूर्ति के सुख की ओर प्रगति होती है ।

इसीलिए कीर्तन में भी कहा गया है कि,

"अनादिमुक्त की सेवा, मेरे लिए तो मीठे मेवे;
मेरे लिए तो मीठे मेवे, श्रीजी की मूर्ति में रहने के लिए ।"

जिसे सेवा की ऐसी महिमा समझ में आई हो उसे सेवा करने में आनंद आता है । भार, कठिनाई, तकलीफ नहीं लगती, सेवा में ही सुख माना जाता है ।

स्वयं अक्षरधाम के अधिपति भगवान स्वामिनारायण जब नीलकंठ वर्णी स्वरूप में लोज पधारे तब स्व-जीवन द्वारा सेवा का महत्त्व समझाया है । पूरे आश्रम में गोबर साफ करते, साफ-सफाई करते, बर्तन मांजते, भिक्षा मांगने जाते, लकड़ियां काटकर उसका गट्ठर लेने जाते, संतों के गातड़ियां (वस्त्र) धोते, रोज सुबह गोबर के उपले बीनने जाते और टोकरी भरकर सिर पर उठाकर लाते । एक बार तो लोज से दो कोस दूर आए हुए शील गांव से स्वयं २२ मन आरिया अपने सिर पर उठाकर लाए थे ।

गढ़पुर में मंदिर बन रहा था तब महाराज ने सबको आज्ञा की थी कि, सबको पत्थर सिर पर उठाकर मंदिर की नींव में डालना और शुरुआत महाराज स्वयं करते थे । महाराज को देखकर संत-हरिभक्त सभी सेवा में लग जाते । पूरा दिन संत-हरिभक्त बहुत सेवा करते थे ।

उस समय रघुनाथानंद स्वामी बीमार संतों की सेवा में लगे रहते थे। जिससे वे मंदिर की सेवा में जा नहीं पाते थे । पूरा दिन संतों को नहलाना-धुलाना, उनकी धोती धोना, उनके चरण दबाना, सिर दुःखता हो तो सिर दबाना, पट्टी रखना आदि बहुत सेवा करते और उसमें व्यस्त रहते जिससे पत्थर उठाने की सेवा का लाभ नहीं ले पाते थे । इसलिए उन्हें दुःख रहता कि, 'अरेरे... मुझसे कोई सेवा होती नहीं है ।' इसलिए वे रोज जितनी बार घेला (नदी) में स्नान करने जाते उतनी बार भारी से भारी पत्थर सिर पर उठाकर लाते। साथ ही, प्रतिदिन रात को छुपके से महाराज को पता न चले वैसे अंधेरे में नदी पर जाते और पत्थर उठाकर लाते और नींव में डालते । प्रतिदिन का यह क्रम था । पर यह बात कोई नहीं जानता था । एक बार आधी रात को कुछ आवाज हुई और महाराज जाग गए और बाहर आकर पूछा कि, "कौन है ? अभी क्या कर रहे हैं ?" देखा तो रघुनाथानंद स्वामी।

महाराज ने कहा, "अरे स्वामी ! अभी क्या कर रहे हो ?"

स्वामी ने कहा, "महाराज, पूरा दिन सभी संत और हरिभक्त कितनी सेवा करते हैं और मैं बीमार संतों की सेवा में व्यस्त होता हूं इसलिए मुझे समय मिलता नहीं है। इसलिए मैं रात को पत्थर डालने की सेवा करता हूं ।"

यह सुनकर महाराज उन पर बहुत राज़ी हो गए । महाराज ने उन्हें बाहों में भरकर गले लगा लिया और बहुत राज़ीपा दिखाया।

कितना सारा आग्रह ! सेवा ही सुख माना हो उससे ही ऐसा हो सकता है । भौतिक सुख की महिमा समझी गई है तो उसके लिए पूरा दिन कैसी भागदौड़ होती है !! परंतु भगवान और भगवान के संतों के लिए ही यह जीवन है और उनकी सेवा ही सुख माना जाए तब सच्चे सत्संग की पहचान हुई कहलाता है ।

एक बार महाराज तावीतलसाणा गांव से देवलिया गांव की ओर पधार रहे थे । वहां रास्ते में देवलिया गांव की सीमा पर आकर महाराज पेड़ के नीचे बिराज गए । महाराज ने कहा, “हमें आगे नहीं आना है । हमारी दाढ़ी-मूंछ बढ़ गई हैं । हमारी आबरू जाएगी । हजामत कराने के बाद ही आगे बढ़ेंगे ।” अब गांव कहां दूर था ? गांव की सीमा पर तो पधार ही गए थे और महाराज ने यह लीला की ।

देवलिया गांव के जालमसिंह बापू महाराज को लेने के लिए सामने से आए थे और उन्होंने महाराज की यह बात सुनी । वे वहीं से महाराज के दर्शन कर ‘अभी ही नाई को लेकर आता हूं’ ऐसा कहकर घोड़े पर सवार होकर जल्दी गांव में आए और गए नाई के घर । और कहा, “जल्दी चल, हमारे महाराज की हजामत करनी है । अभी और इसी वक्त चल ।”

वह नाई तो आनंद में आ गया । उसकी खुशी का ठिकाना न रहा कि, ‘अहोहो... आज मुझ पर कितनी अहोकृपा कि गांव के बापू स्वयं चलकर मेरे घर पधारे और मुझे उन्होंने सेवा दी...’

जालमसिंह बापू ने तो नाई का थैला अपने हाथ में ले लिया और नाई को घोड़े पर बैठा दिया। नाई ना-ना करता रहा और बापू ने नाई को बैठा दिया। स्वयं नाई का थैला हाथ में पकड़कर दौड़ने लगे।

गांव के लोग यह दृश्य देखकर चकित रह गए और कहने लगे, "अरे बापू, यह क्या ? नाई आपके घोड़े पर और आप हाथ में नाई का थैला लेकर दौड़ रहे हैं !" तब बापू ने कहा, "उसमें क्या ! अभी तो अनंतकोटि ब्रह्मांड के अधिपति श्री स्वामिनारायण भगवान की सेवा करनी है। उनकी सेवा में शर्म कैसी ?"

और महाराज की हजामत करवाई, सामैया (स्वागत) कर गांव में पधरामणी करवाई। महाराज उन पर बहुत राज़ी हुए।

इस लोक की दृष्टि से कितना भी बड़प्पन (महानता) हो परंतु भगवान और उनके संत के आगे तो हम कुछ भी नहीं हैं। उनके आगे तो हम दास के दास ही हैं ऐसा न्यूनभाव रहता हो तो उनकी सेवा ही सुख माना जाता है।

वचन की मूर्ति समान सद्. श्री आत्मानंद स्वामी ने अंतिम अवस्था में बहुत बीमारी ग्रहण की थी। तब बोटाद के शिवलाल सेठ सद्. श्री आत्मानंद स्वामी की सेवा में थे। स्वामी को अवस्था के भाव से बार-बार नहाने जाना पड़ता था। वह सब शिवलाल सेठ साफ करते थे, स्वामी की धोती धोते थे। बिस्तर साफ

करते थे। स्वयं लखपति होने के बावजूद सारी सेवा खुद करते थे। किसी ने कहा, “यह सब साफ करने के लिए नौकर रखलो तो।” तब शिवलाल सेठ कहते, “मैं भी स्वामी का नौकर ही हूं ना। इस सेवा का लाभ मुझे कहां से मिले ? यह सेवा तो किसी को न दी जाए। संतों की सेवा ही तो मेरा सुख है।”

स्वामी को आठ महीने तक बीमारी रही और आठ महीने तक शिवलाल सेठ ने स्वामी की बहुत लगन से सेवा की, एकमात्र राज़ीपा की इच्छा से।

स्वामी उन पर बहुत राज़ी हुए और कुछ वरदान मांगने को कहा तब शिवलाल सेठ ने उनके तेरहवें दिन खुद को धाम में ले जाने का वरदान मांगा और २८ वर्ष की छोटी उम्र में स्वयं मूर्ति के सुख से सुखी हुए। इस लोक में भी वे बहुत ही अंतवृत्ति के अंगवाले महाराज के बड़े मुक्त थे।

सेवा करने से होने वाला सबसे बड़ा फायदा बताते हुए महाराज ने स्वमुख से गढ़डा प्रथम के ८वें वचनामृत में भी कहा है कि, “इंद्रियों की जो क्रिया है उसे यदि भगवान और उनके भक्त की सेवा में रखे तो अंतःकरण शुद्ध होता है और अनंतकाल के जो पाप जीव को लगे हैं उनका नाश हो जाता है।”

इस प्रकार, सभी दोष को दूर करने का एकमात्र उपाय है भगवान और संत की सेवा। सभी सुख को पाने का और सभी दुःख को दूर करने का एकमात्र उपाय है भगवान और संत की सेवा।

सेवा भी दो तरह से होती है : (१) मान से, दंभ से, प्रशंसा के लिए, ईर्ष्या से, दबाव से या डर से आदि तरीके से, (२) महिमा सहित सेवा।

महिमा सहित होने वाली सेवा में भार, कठिनाई और तकलीफ नहीं लगती। और किसी भी प्रकार के स्वार्थ के बिना यदि महिमा से सेवा हो तो भगवान और संत का राज़ीपा होता है। उस राज़ीपा के बदले में मूर्ति का अति उत्तम सुख प्राप्त होता है।

इसलिए भगवान और भगवान के सच्चे संत की सेवा निःस्वार्थ भाव से अपने ऊपर हुई अहोकृपा समझकर कर लेना वही सच्चा सुख है। जीवन की वही सच्ची पूंजी है।

स्व-अध्ययन

१. घरमंदिर में महाराज की किसी भी एक सेवा का नियमित लाभ लिया जाता है ? ☐

२. छोटे से छोटे पू. संत आज्ञा करें तो उनके वचन पर कोई भी सेवा उत्साह के साथ कर सकते हैं ?

३. बीमार पू. संतों की तन, मन, धन से सेवा करने का आग्रह रहता है ?

४. सत्संग प्रचार की सेवा का लाभ लेते हैं ?

५. मंदिर में कार्यकर्ता के रूप में सेवा देकर पू. संतों को मददगार बनते हैं ?

दृढ़ संकल्प करें कि,

मुझे मिले हुए संतों-भक्तों की कोई भी सेवा दिव्यभाव से, निर्विकल्प और निःसंशय होकर ही करनी है ।

कलम ८

उनकी आज्ञा और अनुवृत्ति में ही सदा रहूंगा

सूर्य उदय हो तो दीपक या मशाल की जरूरत नहीं रहती। बारिश हो तब बोर (बोरवेल) से पानी निकालने की जरूरत नहीं रहती।

जहाज में बैठे उसे तूंबड़े (तैरने का साधन) बांधने की जरूरत नहीं रहती।

वैसे ही भगवान और संत की आज्ञा और अनुवृत्ति में जो बर्तते हैं उन्हें दूसरे साधन अपने आप सिद्ध हो जाते हैं।

एक बड़े संत के पास एक हरिभक्त ने आकर बात की कि, "वह भक्त तो धारणा-पारणा करते हैं, भूमि पर सोते हैं, मीठा-चिकना (मिष्ठान-तली हुई वस्तुएं) नहीं खाते हैं, दस घंटे ध्यान करते हैं।" यह सुनकर बड़े संत मंद-मंद हंसते हुए एक मर्म वाक्य बोले, "हां, पर वे यह सब किसकी आज्ञा से करते हैं?" अर्थात किसके कहने से करते हैं? खुद से ही ना!! अर्थात् अनंत साधन करें परंतु मनमुखी होकर करें तो उसका फल शून्य है। जबकि भगवान और संत की आज्ञा में रहकर थोड़े साधन, भक्ति, सेवा करें तो उसका फल अनंतगुना मिलता है।

इस प्रकार, श्रीजीमहाराज तथा सत्पुरुष की आज्ञा में टुक-टुक (पूर्णतः समर्पित) होकर रहे वही श्रेष्ठ भक्त है । उसमें भी उनकी रुचि यानी अनुवृत्ति में रहकर आज्ञापालन करना वह तो पराकाष्ठा की बात हुई ।

आज्ञा समय, स्थान, संयोग, स्थिति-परिस्थिति और व्यक्ति के अनुसार बदलती रहती है । जबकि अनुवृत्ति त्रिकालाबाधित होती है । किसी भी व्यक्ति के लिए, किसी भी समय, किसी भी स्थान पर और किसी भी परिस्थिति में एक ही जैसी होती है । अर्थात् अनुवृत्ति में आज्ञा आ जाती है परंतु आज्ञा में अनुवृत्ति न भी आए । आज्ञा की तुलना में अनुवृत्ति का पालन करना श्रेष्ठ है । इसीलिए इस कलम में आज्ञा और अनुवृत्ति दोनों शब्द समाहित कर लिए गए हैं ।

अ.मु. काशीरामभाई को कुमारावस्था में श्री निर्गुणदासजी स्वामी ने वर्तमान धराएं थे और सिर पर हस्त रखकर आशीर्वाद दिए थे कि, “बहुत बड़े मुक्त बनोगे ।”

ई.स. १८९२ में मुंबई और पूना में उच्च शिक्षा प्राप्त कर वे लुणावाड़ा आए । उस समय लुणावाड़ा के राजा वखतसिंहजी ने पांच सौ रुपये वेतन के अलावा अनेक सुविधाओं और अधिकार के साथ काशीरामभाई को दीवान पद ग्रहण करने की

बिनती की । तब काशीरामभाई ने कहा, “मुझे क्षमा करें । मेरा जीवनध्येय तो मेरे गुरु सद्. निर्गुणदासजी स्वामी की आज्ञा से कब का मैंने तय कर रखा है ।”

उनके पिता सेवकराम पुत्र की ऐसी गंभीर भूल से नाराज हुए थे । उसी समय मोरबी के ठाकुरजी सर वाघजी का पत्र भी मिला, “हमारी बहन स्व. वखतुबा की स्मृति में यहां विद्यालय शुरू कर रहे हैं । उस विद्यालय के आचार्य बनें । उसके लिए मासिक दो सौ पचास रुपये वेतन तथा अन्य सुविधाएं प्रदान करेंगे ।”

काशीरामभाई ने कहा, “पिताजी, हम अहमदाबाद जाकर हमारे समर्थ गुरु सद्. निर्गुणदासजी स्वामी की अनुमति ले आते हैं ।”

सद्. निर्गुणदासजी स्वामी ने काशीरामभाई को आज्ञा दी कि, “लुणावाड़ा के दीवान बनने के प्रतिष्ठा के महापद के बदले आप सद् विद्या की सेवा का कार्य स्वीकार करें ।” यह सुनकर उनके पिता चिंतित हुए कि, ‘मोरबी दूर है । उसका ध्यान कौन रखेगा ?’ इसलिए अंतर्यामीपन से स्वामी ने कहा, “सेवकराम, मोरबी दूर है । वहां सत्संग का सुख यहां जैसा नहीं है । वहां काशीराम का ध्यान स्वयं महाराज रखेंगे । इसलिए उसकी चिंता न करें । हम काशीराम को हमारी पूजा में रहे श्री घनश्याम महाराज का स्वरूप है वह देते हैं । वह स्वरूप उसकी खबर (ध्यान) रखेगा ।”

सद्. निर्गुणदासजी स्वामी ने काशीरामभाई को घनश्याम महाराज की मूर्ति देकर, प्रसादी का हार पहनाया और सिर पर हस्त रखा।

पिता-पुत्र जब मंदिर से बाहर निकले तब जिस पेटी में घनश्याम महाराज रखे थे, वह पेटी काशीरामभाई ने अपने सिर पर रखी थी। गुरुआज्ञा को शिरोधार्य करने वाले काशीरामभाई ने १३ अप्रैल, १८९२ के दिन वखतुबा चैरिटेबल विद्यालय के आचार्य पद का कार्यभार संभाल लिया। दो साल के कम समय में ही वखतुबा विद्यालय की गणना श्रेष्ठ श्रेणी में होने लगी। गुरुआज्ञा को तत्काल ग्रहण करने वाले काशीरामभाई की इस लोक में तो ख्याति बहुत हुई परंतु परभाव की भी उच्च मुक्त स्थिति को पाकर श्रीहरि के साथ निरंतर दिव्यभाव से बातें करते थे।

हमें भी काशीरामभाई की तरह जीवन का महत्त्वपूर्ण निर्णय सत्पुरुष तथा पू. संतों से पूछकर लेना चाहिए। एक बार सत्पुरुष या पू. संतों की ओर से मिले निर्णय या आज्ञा को तत्परता से ग्रहण कर उनका राज़ीपा कमाएं।

यह हुए भूतकाल के प्रसंग। वर्तमानकाल में महाराज और सत्पुरुष की आज्ञा-अनुवृत्ति में रहकर सत्पुरुष के अंतर का राज़ीपा कमा रहे मुमुक्षु पात्र के जीवन से प्रेरणा लें।

घनश्यामनगर के युवक मुक्त राजुभाई चंदुभाई पटेल को प्यारे गुरुजी ने नियम दिया था कि, 'युवक सभा में नियमित हाज़िर रहना । कैसे भी संयोग आएं फिर भी छुट्टी मत रखना ।' वे गुरुजी की आज्ञा का दृढ़ता से पालन करते थे ।

दिनांक १-१२-१९९९, शनिवार के दिन सुबह उनके विवाह थे । शाम को रिसेप्शन था । इसी दिन रात को मंदिर में साप्ताहिक (युवक) सभा थी । उन्होंने मन में निश्चय कर लिया था कि, 'मुझे गुरुजी द्वारा दिया गया नियम तोड़ना नहीं है । मैं सभा में जाऊंगा ही । भले ही विवाह का दिन हो !' रिसेप्शन का समय शाम ७ से ९ का था । ९ बजने में पांच मिनट शेष थे और वे किसी को बताए बिना ही सूट बदलकर श्वेत वस्त्र धारण कर अपने विवाह के रिसेप्शन का प्रोग्राम छोड़कर मंदिर में सभा में हाज़िरी देने पहुंच गए ।

गुरुआज्ञा में बर्तने की कितनी लगन !!

एक बार प्यारे गुरुजी कनाडा में विचरण में थे । गुरुजी ने कनाडा से अटलांटा निवासी प.भ. रमेशभाई सुहागिया को पत्र लिखकर आज्ञा दी कि, "रमेशभाई, हम पांच दिन अमेरिका-अटलांटा आने वाले हैं पर वास्तव में लाभ लेना हो तो इन तारीखों में कनाडा आ जाओ ।" उन तारीखों में रमेशभाई की इंडिया में मुंबई में एक बड़े कॉन्ट्रैक्ट की बहुत महत्त्वपूर्ण मीटिंग तय हो चुकी थी । जिस कॉन्ट्रैक्ट से

बिजनेस में करोड़ों का फायदा होने वाला था । फिर भी गुरुजी ने अधिकार से लिखा था कि, “इन दिनों में कनाडा पधारना ।” उन्होंने गुरुजी का आज्ञापत्र पढ़कर मुंबई की तारीख बदलने के लिए प्रयास शुरू किए । महाराज कर्ता बने और प्रोग्राम बदल दिया । मीटिंग की तारीख बदल गई । उन्होंने चार-पांच दिन पहले गुरुजी को फोन करके बता दिया कि, “गुरुजी, मैं अगले दिन कनाडा पहुंच जाऊंगा ।” गुरुजी कनाडा पधारे उसके अगले दिन वे कनाडा गुरुजी का लाभ लेने पहुंच गए । उन्हें कनाडा लाभ लेने आए देख गुरुजी ने उन्हें गले लगाकर बहुत राज़ीपा दिया था । गुरुजी द्वारा एक बार बताई गई अनुवृत्ति का जीवनभर पालन करने वाले पात्रों के जीवन से रुचिकर पात्र बनने की प्रेरणा पाएं ।

ई.स. २००८ में दिव्यजीवन सेवक शिविर में प्यारे गुरुजी ने दिव्यजीवन प्रथा में जुड़े हरिभक्तों को अपनी रुचि बताते हुए कहा था कि, “सभी हरिभक्त श्वेत वस्त्र पहनें तो महाराज बहुत राज़ी होंगे ।” गुरुजी की रुचि सुनकर जिन्होंने श्वेत वस्त्र पहनने का नियम लिया उन्हें सभा में खड़ा करके गुरुजी ने बहुत राज़ीपा दिया ।

जिसमें नरोड़ा क्षेत्र के जिगरभाई हरिभाई पटेल भी खड़े हुए । उन्होंने श्वेत वस्त्र पहनने का नियम तो लिया ही, परंतु अपने देह को सजाने के लिए कभी सोना न पहनने का नियम भी लिया ।

दिनांक २१-३-२००९ के दिन उनके विवाह थे। विवाह के दिन भी उनका यह नियम अडिग रहा। रजोगुणी वस्त्र परिधान न करते हुए श्वेत सूट पहनकर ही विवाह में जाने को कहा। तथा अंगूठी, चेन आदि सोना भी न पहनने के लिए कहा। परिवार के सदस्यों ने आग्रह किया कि, "विवाह के दिन तो छूट होती है। एक दिन पहनने में कोई हर्ज नहीं।" परंतु उनके मुख से एक ही आवाज थी, "गुरुजी की रुचि नहीं है।" और वास्तव में वे किसी भी प्रकार का सोना पहने बिना मात्र श्वेत सूट पहनकर अपने विवाह में गए। उनकी सात्त्विकता और रुचि में बर्तने की लगन देखकर गुरुजी अंतर से बहुत राज़ी हो गए थे।

इस प्रकार, हमें भी इन सभी प्रसंगों को लक्ष्य बनाकर अखंड महाराज की रुचि में बर्तने का आग्रह रखना चाहिए।

स्व-अध्ययन

१. सत्पुरुष और पू. संत जो भी आज्ञा दें उसे हम तत्परता से ग्रहण करते हैं ?

☐

२. सत्पुरुष या पू. संत जब आज्ञा करे तब क्या समय-संयोग की ओर देखते है ?

☐

३. धर्मादा ५% या १०% नियमित निकालता हूं ?

४. गुरुजी की रुचि के अनुसार रोज सुबह दो घंटे एकांत के लिए समय निकालता हूं ?

५. गुरुजी की रुचि के अनुसार फैशनेबल बाल तथा दाढ़ी के स्थान पर साधारण बाल तथा दाढ़ी रखता हूं ?

दृढ़ संकल्प करें कि,

मेरा देह, धन, कुटुंब-परिवार सर्वस्व भगवान और संत के लिए ही कर रखना है ।

कलम ९

प्रत्येक सत्संगी के सुख-दुःख में सदा भागीदार बनूंगा

मानव परस्पर एक-दूसरे के सुख-दुःख में मददगार हो वह मानवता है । परंतु भगवान के भक्त के सुख-दुःख में भागीदार बना जाए और समय आने पर उनको मददगार बना जाए वह भक्तपद की चरमसीमा है ।

दादाखाचर की अमरेली के बाबाजी की सेना से रक्षा की ।

मांगरोल के आणंदजी संघाडिया का व्यवहार सुधारा ।

एक बार बारिश और चक्रवात से गिर गए एक हरिभक्त के घर की बल्ली (मोभ) श्रीहरि ने अपने कंधे पर उठाकर उनके पशु-धन और संपत्ति की रक्षा की थी । इस प्रकार, भगवान स्वामिनारायण स्वयं भी सत्संगी बंधुओं के सुख-दुःख में तत्परता से हाजिर रहते थे ।

श्रीजीमहाराज का यह सिद्धांत था कि, 'प्रत्येक सत्संगी के सुख-दुःख में भागीदार होना ।' गुरुदेव प.पू. बापजी और गुरुजी प.पू. स्वामीश्री ने इसे जीवनमंत्र के स्वरूप में हमें दिया है ।

जिसे गढ़डा अंत्य प्रकरण के ७वें वचनामृत के दिव्य शब्दों द्वारा जानें : “हमारे अंतर का जो सिद्धांत है वह कहते हैं कि, जिसे अपने कल्याण की चाहना हो उसे तो भगवान और भगवान के साधु के सिवा दूसरा कुछ जगत में सुखदायी नहीं है। इसलिए जैसे अपने शरीर के प्रति जीव को आत्मबुद्धि बर्तती है, वैसी भगवान और भगवान के संत के प्रति आत्मबुद्धि रखनी चाहिए और भगवान के भक्त का पक्ष दृढ़ करके रखना चाहिए, और वह पक्ष रखते हुए आबरू बढ़े अथवा घटे अथवा मान हो या अपमान हो अथवा देह जीवित रहे या मरे पर किसी भी तरह से भगवान और भगवान के भक्त का पक्ष छोड़ना नहीं, और उनका अभाव आने देना नहीं, और भगवान के भक्त जैसे देह और देह के सगे-संबंधियों को प्रिय नहीं रखना, ऐसी रीति से जो हरिभक्त बर्तता है उसे अति बलवान ऐसे जो काम-क्रोधादिक शत्रु हैं वे भी पराजित नहीं कर सकते।”

मांगरोल के करमशी भक्त की सेवा करने के लिए जीणाभाई पंचाला ले आए थे। खूब लगन से अपने आत्मीयजन (परिवार के सदस्य) जानकर जीणाभाई स्वयं उनकी सेवा करते थे। एक बार करमशी भक्त का सिर बहुत दु:ख रहा था। उन्होंने जीणाभाई से जरा बात की। जीणाभाई ने अपनी बहन अदीबा से कहा कि, “बहन, घर में सोंठ और मिर्च (काली मिर्च) हो तो पीसकर ले आओ तो करमशी भक्त के

माथे पर लगाएं ।” अदीबा को थोड़ा संकल्प हुआ कि, ‘इन पराये की भला इतनी क्या सेवा ? कितने दिनों से सेवा कर रहे हैं !’ और ऐसे विचार से घर में जाकर थोड़ी देर रहकर वापस आएं और कहा, “भाई, मैंने घर में देखा पर... काली मिर्च तो नहीं दिख रही हैं । खत्म हो गई लगती हैं ।”

जीणाभाई को बहन के इस जवाब में कुछ अजीब लगा और शंका हुई । पर फिर भी उस समय तो उन्होंने सुन लिया ।

दूसरे दिन सुबह से ही जीणाभाई जानबूझकर बेचैन बन गए और थोड़ी देर सो गए । अदीबा ने आकर भाई के स्वास्थ्य के समाचार पूछे । तब उदास मुंह करके जीणाभाई बोले, “बहन, आज तो सुबह से सिर बहुत दुःख रहा है । यदि सोंठ और काली मिर्च होती तो लगाता ।”

और थोड़ी देर में अदीबा घर में जाकर सोंठ-काली मिर्च पीसकर, कटोरा भरकर जीणाभाई को लगाने के लिए ले आएं ।

जीणाभाई, जिनके हृदय में भगवान के भक्त की सेवा देह और देह के सगे-संबंधियों से भी अधिक थी वे यह कैसे सह सकते थे ? उन्होंने कटोरा फेंक दिया और बोल उठे, “बहन, कल करमशी भक्त की सेवा में सोंठ-काली मिर्च नहीं थी और आज कहां से आई ? महाराज के भक्त के प्रति में यदि तुम्हारे मन में अपनेपन

की भावना न हो और उनकी सेवा बेगार लगती हो तो जाओ, आज के बाद मैं तुम्हारा मुंह नहीं देखूंगा ।" कैसा भगवान के भक्त के प्रति प्रेम ! और सचमुच जीणाभाई ने भक्त का पक्ष रखने के लिए १८-१८ वर्षों तक अपनी सगी बहन का मुंह भी नहीं देखा । इसे कहते हैं भगवान का सच्चा भक्त ! जिन्होंने देह के संबंधी से अधिक स्नेह भगवान के भक्त के साथ जोड़ा था ।

एक बार हळवद के धनजीभाई का इकलौता बेटा ओधवजी बीमार पड़ा । और बीमारी बहुत बढ़ गई । दूसरी ओर मालणियाद गांव के पास के अंजार गांव के श्रीजीमहाराज के अनन्य आश्रित श्री भाईचंदभाई का इकलौता बेटा तलकशी भी बहुत बीमार था । इस प्रकार दोनों बेटे अंतिम घड़ी में (देह त्यागने की तैयारी में) थे । अंजार वाले भाईचंदभाई का आदमी हळवद धनजीभाई को तलकशीभाई की दवा करने के लिए बुलाने आया । इस तरफ बेटा ओधवजी अंतिम घड़ी गीन रहा है और दूसरी तरफ सत्संगी का बेटा देह त्यागने की तैयारी में है । ऐसे समय में क्या करें ? अपने बेटे की सेवा में रहें या महाराज के अनन्य आश्रित ऐसे भाईचंदभाई के बेटे तलकशी की सेवा करने जाएं ? क्या ऐसे प्रश्नों की झड़ी धनजीभाई को उलझा सकी या नहीं ? नहीं... नहीं..!

धनजीभाई तुरंत तैयार हो गए। धनजीभाई के पिता सुंदरजीभाई ने धनजीभाई से कहा, "अरे धनजी, यह तेरा बेटा अंतिम घड़ी में है और तू वहां जाएगा ?" धनजीभाई ने कहा, "पिताजी, पहले सत्संग का पक्ष, फिर संबंधी का। यदि मैं न जाऊं तो भाईचंदभाई का चने का खेत नष्ट हो जाए (अर्थात् उनका इकलौता बेटा है वह धाम में चला जाए) वह ठीक नहीं। ओधवजी का तो महाराज की जो इच्छा होगी वैसा होगा।" उनके पिता ने कहा, "अरे, पर तेरा भी तो इकलौता ही है। तेरा कहां ज्वार का खेत था ? चने का ही है न ?" अर्थात् तेरा भी इकलौता ही बेटा है और वह भी देह त्यागने की तैयारी में है।

फिर भी जिन्होंने सत्संग को जीवन माना है, भगवान और भगवान के संतों-भक्तों को ही सच्चा संबंधी माना है। उनके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी थे, उन्हें जगत की या देह-देह के संबंधी की प्रधानता हो सकती है क्या ?

और धनजीभाई अंजार गए। फिर तो बापाश्री ने दोनों के बेटों को दर्शन दिए और कहा कि, "तुम दोनों की आयु समाप्त हो चुकी है। पर इस धनजीभाई ने सत्संग का पक्ष रखा इसलिए हमें दोनों को रखना है।" इस तरह दोनों को बापाश्री ने कृपा करके सत्संग की सेवा करने के लिए रखा। इसी का नाम है प्रत्येक सत्संगी

के सुख-दुःख में सदा भागीदार होने की भावना । धन्य हैं ऐसे प्ररणामूर्ति समान भक्तों को !

इस प्रकार, इस लोक-परलोक में सदा सुखी रहने के लिए भगवान के भक्त के सुख-दुःख में सदा भागीदार बने रहना । समय आने पर उनके साथ खड़े रहना । उनकी चिंता रखना तो महाराज बहुत राज़ी होते हैं ।

स्व-अध्ययन

१. सभी सत्संगी बंधुओ व्यतिरेक के संबंधवाले है ऐसा महात्म्य का विचार रहता है ? ☐

२. सत्संगी बंधु को बीमारी में रूबरू या फोन करके उनके हाल-चाल पूछते हैं ? ☐

३. अच्छे-बुरे प्रसंगों में सत्संगी हरिभक्त के घर उपस्थिति देते हैं ? ☐

४. सगे-संबंधियों का सत्संगी बंधु को सहयोग न मिले तब सच्चे संबंधी के तौर पर उनके साथ खड़े रहते हैं ? ☐

५. आर्थिक रूप से गरीब सत्संगी बंधु को प्रसंगानुसार आर्थिक सहायता करके सुख-दुःख में भागीदार बना जाता है ? ☐

दृढ़ संकल्प करें कि,

जीवन के अंतिम श्वास तक सत्संगी बंधुओं के सुख-दुःख में भागीदार बनकर ही रहना है।

आद्य स्थापक
गुरुदेव प.पू. बापजी

संस्थापक गुरुदेव प.पू. बापजी
गुरुवर्य प.पू. स्वामीश्री परिचय

दिव्य प्रेरक
गुरुवर्य प.पू. स्वामीश्री

"सिद्धांत में समाधान नहीं और नियम-धर्म में छूट नहीं।" - इस सूत्र को जीवनभर धारण करके भगवान श्री स्वामिनारायण की आज्ञा-उपासना और महिमा का सर्वजन के हित में प्रचार करने वाले गुरुदेव प.पू. बापजी एक सिद्धांतवादी सत्पुरुष हैं। गुरुदेव प.पू. बापजी की निर्दोष साधुता, धर्म-नियम की अणीशुद्धता, निर्मानीपन और श्रीजी का कर्तापन आदि गुणों ने लाखों के जीवन में प्रेरणा के पीयूष पीलाए हैं। गुरुदेव प.पू. बापजी ऐसे क्रांतिकारी युगपुरुष है कि जिनके अल्प जोग से मुमुक्षु को भगवान स्वामिनारायण के स्वरूप की यथार्थ पहचान हो जाती है ओर आत्यंतिक कल्याण की प्राप्ति हो जाती है। अवरभाव की ८६ साल की उम्र तक उन्होंने विशेष रूप से पंचमहाल और समग्र गुजरात के अनगिनत गांव में तथा देश-विदेश के अनेक शहरों में विचरण किया था। हजारों भक्तों के घरों की व्यक्तिगत मुलाकात की थी। उनके अथाक प्रयत्नों से लाखों संत-हरिभक्तों के जीवन में परिवर्तन के दीये प्रकाशमान हुए हैं।

उनके क्रांतिकारी कार्यों को और अधिक वेग देकर जन-जन तक उनका संदेश पहुंचाने के लिए गुरुदेव प.पू. बापजी की आज्ञा से प्यारे गुरुवर्य प.पू. सत्यसंकल्पदासजी स्वामीश्री संस्था का नेतृत्व संभाल रहे है। साथ ही गुरुदेव प.पू. बापजी के तमाम कल्याणकारी गुणों को धारण कर आदर्श शिष्यत्व शोभा रहे है। उन्हें स्वयं स्वामिनारायण भगवान ने प्रतिमा से प्रकट होकर दीक्षा दी और आशीर्वाद दिए कि : **"चाहे कैसा भी अधम और पापी जीव हो लेकिन तू उसके मोक्षसंबंधी जो जो संकल्प करेगा वो हम सत्य करेंगें और अंत में मूर्ति के सुख मे पहुंचाएंगे। हम सदैव तेरे साथ है। तेरे सभी संकल्प पूरे होंगे। इसलिए हम तेरा नाम साधु सत्यसंकल्पदास रखते है।"**

आज देश-समाज में आध्यात्मिक उन्नति का कार्य हो या फिर समाज सेवा का अत्यंत कठिन कार्य हो इसमें गुरुवर्य प.पू. सत्यसंकल्पदासजी स्वामीश्री की निरंतर प्रेरणा मिलती रही है। उनकी प्रेरणा से ही **SMVS** संस्था के संत, कार्यकर्ताओ अविरत विचरण करके जीवन परिवर्तन के साथ देहभाव से पृथक् होकर आत्मभूमिका पर जाकर अनादिमुक्त की स्थिति पाकर सदेह स्वामिनारायण भगवान की मूर्ति का सुख पाने का दिव्य संदेश जन-जन तक पहुंचा रहे है। ऐसी उच्च आध्यात्मिकता के साथ शैक्षणिक सेवाएं, चिकित्सा सेवाएं, भूंकप पीड़ितो की सहायता तथा बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में राहतकार्य की सेवाएं और सरकार द्वारा आते रचनात्मक आयोजनों में भी गुरुवर्य प.पू. स्वामीश्री की प्रेरणा से संस्था सक्रिय रूप से जुड़ती रही है। गुरुदेव प.पू. बापजी और गुरुजी प.पू. स्वामीश्री ने एक बात कही है कि **SMVS** संस्था द्वारा हो रहे सभी सेवाकार्य का श्रेय स्वामिनारायण भगवान के चरणों में ही समर्पित है। उनकी ही दिव्य प्रेरणा से संस्था की आन-बान-शान पूरे विश्व में फैल रही है।

स्वामिनारायण भगवान मेरे इष्टदेव हैं ।

यह सत्संग मेरा घर है ।

महाराज की मूर्ति मेरा ध्येय है ।

सदेह मैं मूर्तिधाम में ही हूं ।

महाराज के लिए ही मेरा जन्म है ।

उन्हीं के होकर ही सदा जीना है ।

भगवान और संत की सेवा ही मेरा सुख है ।

उनकी आज्ञा और अनुवृत्ति में ही सदा रहूंगा ।

प्रत्येक सत्संगी के सुख-दुःख में सदा भागीदार बनूंगा ।